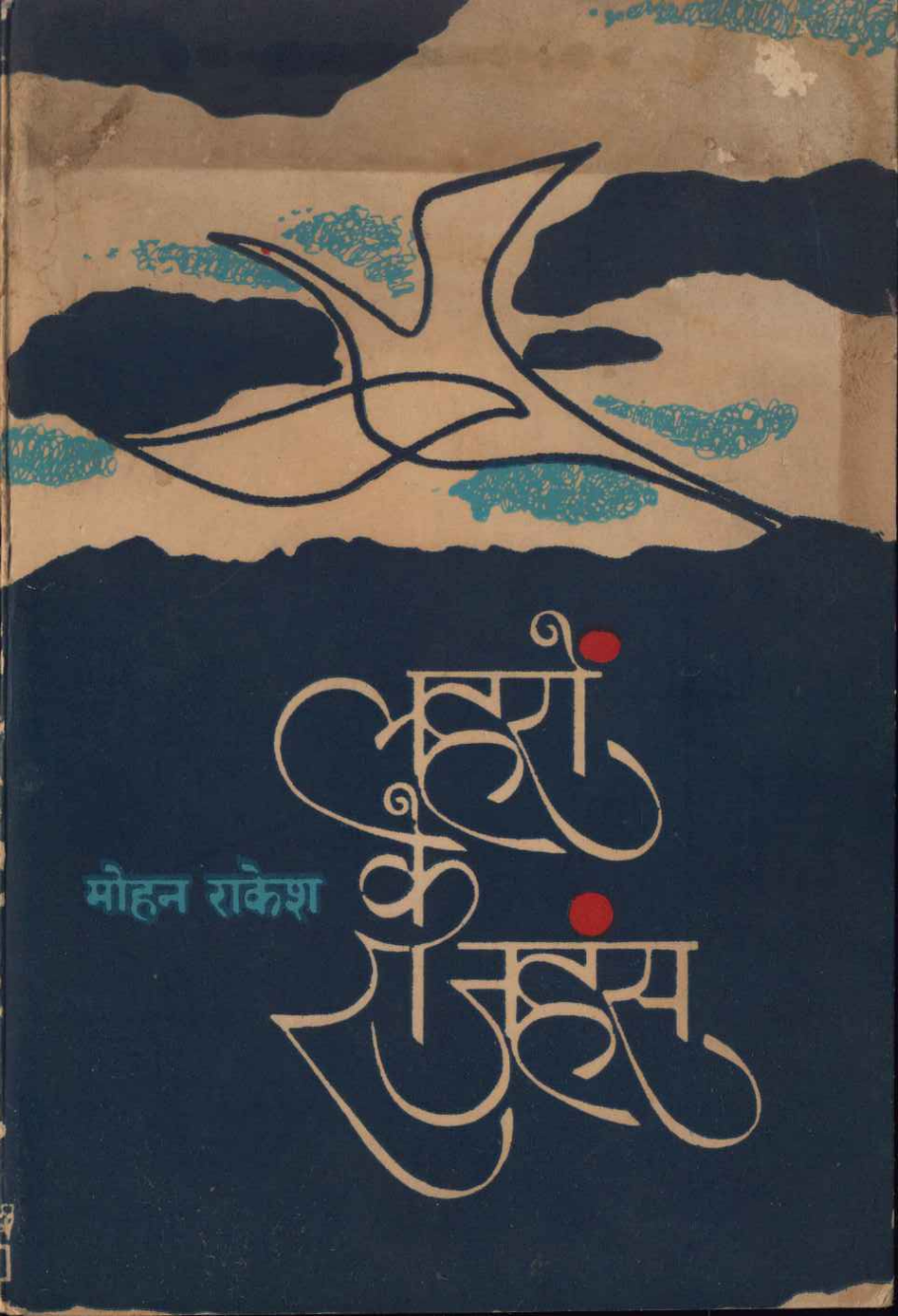
मोहन राकेश
आधे अधूरे

लहरों के राजहंस

मोहन राकेश

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

नाटक को संपूर्ण या आंशिक रूप से रंगमंचं पर प्रस्तुत करने से पहले निश्चित शुल्क देकर लिखित अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।

अनुमति के लिए पत्र-व्यवहार का पता : अनिता राकेश, द्वारा राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002.

मूल्य : रु. 12.00

© अनिता राकेश

परिवर्धित संस्करण : 1965
यह संस्करण : 1993

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
1-बी. नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110002.

टाइसैटिंग : ज़ोतासा एंटरप्राइज़ेज
101-ए, सूर्यकिरण, कस्तूरबा गाँधी मार्ग,
नई दिल्ली-110001.

मुद्रक : मेहरा ऑफसेट प्रेस,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

LAHRON KE RAJHANS
Play by Mohan Rakesh

उस एक को

जिसे, लगता है
मन की बात कहकर आदमी छोटा हो जाता है।

भूमिका

लहरों के राजहंस में एक ऐसे कथानक का नाटकीय पुनराख्यान है जिसमें सांसारिक सुखों और आध्यात्मिक शांति के पारस्परिक विरोध तथा उनके बीच खड़े हुए व्यक्ति के द्वारा निर्णय लेने का अनिवार्य द्वंद्व निहित है। इस द्वंद्व का एक दूसरा पक्ष स्त्री और पुरुष के पारस्परिक संबंधों का अंतर्विरोध है। जीवन के प्रेय और श्रेय के बीच एक कृत्रिम और आरोपित विरोध है, जिसके कारण व्यक्ति के लिए चुनाव कठिन हो जाता है और उसे चुनाव करने की स्वतंत्रता भी नहीं रह जाती। चुनाव की यातना ही इस नाटक का कथा-बीज और उसका केंद्र-बिंदु है। धर्म-भावना से प्रेरित इस कथानक में उलझे हुए ऐसे ही अनेक प्रश्नों का इस कृति में नए भाव-बोध के परिवेश में परीक्षण किया गया है।

सुंदरी के रूपपाश में बँधे हुए अनिश्चित, अस्थिर और संशयी मनवाले नंद की यही स्थिति होनी थी कि नाटक का अंत होते-होते उसके हाथों में भिक्षापात्र होता और धर्म-दीक्षा में उसके केश काट दिए जाते। लहरों पर डोलनेवाले राजहंस के समान ही नंद का मन चंचल है। वह न तो सुंदरी के रूपपाश से ही मुक्त हो पा रहा है और न सच्चे और निर्विकार मन से भगवान बुद्ध की ही शरण में जा पा रहा है। अश्वघोष के प्रसिद्ध महाकाव्य **सौंदरनंद** में, जो इस नाटक की कथा का आधार है, नंद के इस दुविधाग्रस्त मन का बड़ा ही सुंदर काव्य-चित्र प्रस्तुत किया गया है :

तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष भार्यानुरागः पुनराचकर्ष।
सोऽनिश्चयान्नापिययौ न तस्थौ तरंस्तरंगेष्विव राजहंसः।।

"बुद्ध का गौरव उसे अपनी ओर खींच रहा था, और सुंदरी का अनुराग अपनी ओर। इसी दुविधा में उससे न जाते बनं रहा था न रुकते, उसकी स्थिति लहरों पर डोलते हुए राजहंस की-सी हो रही थी।"

इसी काव्य-चित्र से नाटककार ने अपने इस नाटक का शीर्षक लिया है।

यह काव्य-चित्र इस नाटक के मूल द्वंद्व-भाव को व्यंजित करता है।

नंद कथा बुद्ध के जीवनचरित का एक अंग है। अश्वघोष के ही दूसरे प्रसिद्ध महाकाव्य **बुद्ध-चरित** में नंद की दीक्षा का उल्लेख किया गया है। इस कथा का आधार पालि साहित्य में मिलता है। उदान और जातक में तथा धम्मपद के श्लोक 13-14 की अट्ठकथा (व्याख्या) में नंद की कथा कही गई है। किंतु पालि की नंद कथा से **सौंदरनंद** की कथा कुछ भिन्न है। अतः हो सकता है कि इसका वास्तविक आधार कुछ और ही रहा हो, जो अब अप्राप्य है। प्रस्तुत नाटक की कथा का आधार **सौंदरनंद** ही है। परंतु नाटककार ने कथा के नाटकीय भाव और प्रयोजन को पुष्ट और तीव्र करने के लिए नए पात्रों और प्रसंगों की कल्पना की है। कामोत्सव का आयोजन, दीक्षा के पश्चात् नंद का एक बार गृह लौट आना तथा अलका और श्यामांग का पूरा प्रसंग नाटककार द्वारा कल्पित है।

लहरों के राजहंस के कथानक को आधुनिक जीवन के भावबोध का जो संवेदन दिया गया है, वही इस ऐतिहासिक कथानक को रचनात्मकस्तर पर महत्त्वपूर्ण बनाता है। नाटक की प्रस्तावना में नाटककार ने इस संबंध में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है: "कथा का आधार अश्वघोष का **सौंदरनंद** काव्य है। परंतु समय के विस्तार में स्थितियों का परिक्षेपण करने के कारण यह काल्पनिक भी है।" इतिहास और साहित्य के संबंध की व्याख्या करते हुए नाटककार लिखता है: "साहित्य में इतिहास अपनी यथातथ्य घटनाओं में व्यक्त नहीं होता, घटनाओं को जोड़नेवाली ऐसी कल्पनाओं में व्यक्त होता है जो अपने ही एक नए और अलग रूप में इतिहास का निर्माण करती हैं।..." साहित्य इतिहास के समय से बँधता नहीं, समय में इतिहास का विस्तार करता है। ऐतिहासिक नाटकों में कथानक की ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता का रचनात्मक दृष्टिकोण से कोई अर्थ नहीं है। वास्तव में, ऐतिहासिक कथानकों के आधार पर श्रेष्ठ और सशक्त नाटकों की रचना तभी हो सकती है, जब नाटककार ऐतिहासिक पात्रों और कथा-स्थितियों को 'अनैतिहासिक' और 'युगीन' बना दे तथा कथा के अंतर्द्वंद्व को आधुनिक अर्थ-व्यंजना प्रदान कर दे।

हिंदी में ऐतिहासिक नाटकों के कथानकों की प्रामाणिकता पर आग्रह रहता है; और तभी हिंदी के अधिकांश ऐतिहासिक नाटक इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों का नाटकीकृत रूप मात्र लगते हैं। इसके साथ ही, हिंदी के आधुनिक नाटक साहित्य की जो दो-चार श्रेष्ठ कृतियाँ हैं—**स्कंदगुप्त, कोणार्क, अंधा युग** और

आषाढ़ का एक दिन—वे सभी ऐतिहासिक हैं। इनकी श्रेष्ठता का कारण यह है कि इनके द्वारा नाटककारों ने ऐतिहासिक कथानक नहीं दोहराए, उनको नए परिवेश और आधुनिक संदर्भों में प्रस्तुत किया है। सभी देशों के नाटक-साहित्य के इतिहास में विभिन्न युगों में जब भी श्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटकों की रचना हुई है, तब नाटककारों ने प्राचीन कथानकों को नई दृष्टि से देखा है और उनको नई अर्थ-व्यंजनाएँ दी हैं—चाहे ढाई हजार वर्ष पूर्व लिखी गई महान् यूनानी त्रासदियाँ हों, चाहे एलिज़ाबेथ-कालीन कामदियाँ और चाहे फ्रांस, जर्मनी, इंगलैंड और अमरीका में पिछले दस-पंद्रह वर्षों में लिखे गए नई शैली के ऐतिहासिक नाटक।

(2)

कपिलवस्तु में जिस समय भगवान् बुद्ध धर्मोपदेश कर रहे थे, और उनके जाति-भाई धर्म के प्रति प्रेरित होकर दीक्षित हो रहे थे, कामासक्त नंद अपनी परम रूपवती प्रियतमा सुंदरी के साथ विहार में लीन रहता था। लेकिन नंद का मन स्थिर भाव से सुंदरी का रूपभोग नहीं कर पाता, क्योंकि कहीं भीतर उसके मन में अस्थूल और असंसारी तत्त्वों के प्रति भी आकर्षण है। उसके मन का यही संस्कार और उसको पोषित करनेवाली बाह्य परिस्थितियाँ ही नाटक के द्वंद्व का आधार हैं। वह घर से लौटे हुए उपेक्षित बुद्ध से क्षमा-याचना करने के लिए जाने को विकल हो जाता है। जिस समय वह हाथ में दर्पण लिए सुंदरी के शृंगार में लीन है, उसी समय 'धम्मं शरणं गच्छामि' का स्वर उठता है और सहसा उसके हाथ का दर्पण गिरकर टूट जाता है। दर्पण का टूटना और कमलताल में डोलती हुई बुद्ध की कल्पित छाया ऐसे ही प्रतीक हैं, जो नंद की अस्थिर और दुविधाग्रस्त मनोदशा का संकेत करते हैं। अपनी ही क्लांति से मरे हुए मृग की बात बार-बार सोचना और दीक्षा के पश्चात् व्याघ्र से लड़ना उसकी इसी मनोदशा की प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। नंद जब अनायास और अनिच्छा से ही भिक्षु बना दिया जाता है, और वह भिक्षु-वेश में घर लौटता है, तो सुंदरी को देखकर कहता है, "जिस सामर्थ्य और विश्वास के बल पर जी रहा था, उसी के सामने, मुझे असमर्थ और असहाय बनाकर फेंक दिया गया है।"

एक ओर तो नंद के मन का यह द्वंद्व है, और दूसरी ओर रूपगर्विता सुंदरी के इस खंडित विश्वास की पीड़ा कि उसमें आसक्त उसका पति कैसे उसके

रूपपाश से मुक्त होकर बौद्ध भिक्षु होकर उन्हीं हाथों में भिक्षा-पात्र लेकर उसके पास लौटा है, जिन हाथों में उसके शृंगार के लिए उसने दर्पण उठाया था। सुंदरी जीवन का भोग करना चाहती है, वह कामनाओं को स्थगित नहीं करना चाहती। कमलताल के राजहंसों के जोड़े की किलोल सुनकर वह कहती है: "कोई गौतम बुद्ध से कहे कि कभी कमलताल के पास जाकर इनसे भी वे निर्वाण और अमरत्व की बात कहें।" नाटक के अंत में जब वह नंद के द्वारा चंदनलेप का बिंदु बनाए जाने पर चौंककर जाग जाती है तो उसकी दृष्टि नंद के केश कटे हुए भिक्षु-वेशी मुख पर पड़ती है। उसका मन वितृष्णा से भर जाता है। इस प्रकार नाटक का कथानक अंतर्द्वंद्व के दो स्तरों पर संचरण करता है, और इन्हीं दो स्तरों की पारस्परिक टकराहट से उसकी नाटकीयता अधिक तीव्र और गहन होती है।

नाटक का पहला अंक सुंदरी के कक्ष में आरंभ होता है। कर्मचारी साज-सज्जा में लगे हुए हैं। सुंदरी के आग्रह पर कामोत्सव मनाया जानेवाला है। अतिथियों की प्रतीक्षा है। एक अतिथि मैत्रेय पधारते हैं। और जब कामोत्सव में सम्मिलित होने के लिए मैत्रेय के अतिरिक्त और कोई नहीं आता तो सुंदरी अपमान में विक्षुब्ध हो उठती है। इसी अत्यंत तीव्र और गहन कथा-स्थिति में पहला अंक समाप्त होता है।

यही अंक क्रिया-व्यापार का पहला संचरण (Movement) है। इसमें व्यापार और भाव की अन्विति का पूरा निर्वाह हुआ है। सुंदरी की चारित्रिक विशेषताओं का परिचय मिल जाता है। नाटकीय कथा के उस द्वंद्व का पूर्वाभास हो जाता है जिसे नंद को झेलना है। गौण पात्रों और प्रसंगों को भी इसी अंक में प्रस्तुत कर दिया जाता है। और इस प्रकार से नाटकीय कथा का उद्घाटन (Exposition) बड़ी सफलता के साथ होता है। कामोत्सव का आयोजन इस संदर्भ में विशेष नाटकीय अर्थ और तीव्रता ग्रहण कर लेता है कि दूसरे ही दिन रानी यशोधरा भिक्षुणी बनने जा रही हैं। कामोत्सव के आयोजन में लगा हुआ श्यामांग कहता है: "कल प्रातः देवी यशोधरा भिक्षुणी के रूप में दीक्षा ग्रहण करेंगी और यहाँ रात-भर नृत्य होगा। आपानक चलेगा।" और सुंदरी अलका से बातें करती हुई कहती है: "नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।" कमलताल में राजहंसों का कलरव और श्यामांग द्वारा (बुद्ध की) छाया की कल्पना—इस प्रसंग को गहरी

नाटकीय व्यंजना प्रदान करते हैं।

वस्तु-विधान में नाटकीय कथा का उद्घाटन बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि यही अंश दर्शकों की रुचि जागृत करता है और उनको नाटकीय पात्रों के साथ ऐसे संबंध-सूत्रों में बाँधता है जो नाट्यानुभव में सहायक होते हैं। इस अंश में नाटककार अत्यंत कुशलता के साथ नाटकीय कथा के प्रायः सभी प्रमुख और कुछ गौण पात्रों को प्रस्तुत करता है तथा उनके अतीत जीवन और उनकी वर्तमान इच्छाओं और प्रयोजनों को इंगित करता है। तीन अंकों वाले आधुनिक शैली के नाटकों में पहला अंक प्रायः कथा के उद्घाटन में ही लग जाता है; लेकिन सफल नाटकों में अंक समाप्त होते-होते कथानक में कुछ तीव्रता और उत्तेजना आने लगती है और हमारी रुचि बढ़ने लगती है।

दूसरा अंक भी सुंदरी के ही कक्ष में आरंभ होता है। नंद सुंदरी का शृंगार कर रहा है। बीच-बीच में नेपथ्य से कर्मचारी श्यामांग का ज्वर-प्रलाप सुनाई पड़ता है: "इन लहरों पर से···लहरों पर से यह छाया हटा दो···मुझसे···यह छाया नहीं ओढ़ी जाती।" जिस समय नंद सुंदरी के शृंगार में व्यस्त है, अलका यह संदेश लाती है कि गौतम बुद्ध भिक्षा के लिए द्वार पर आए थे और भिक्षा की याचना करने के बाद लौट गए हैं। नंद सुंदरी से कहता है कि मुझे जाकर इस प्रमाद के लिए उनसे क्षमा-याचना करनी चाहिए। सुंदरी यह कहकर अनुमति दे देती है कि जाइए लौटकर आप ही इस विशेषक को पूरा करेंगे और तभी मैं शेष शृंगार करूँगी। नंद चला जाता है और यह अंक नेपथ्य से श्यामांग के इस संवाद के साथ समाप्त होता है: "यह छाया मेरे ऊपर से हटा दो?···एक किरण···कोई एक किरण···"

यह अंक कथा का दूसरा संचरण है; और इसमें भी व्यापार-अन्विति का पूरा निर्वाह हुआ है। अंक समाप्त होते-होते कथा का मूल द्वंद्व आरंभ हो जाता है। नंद बुद्ध के पास क्षमा-याचना के लिए चले जाते हैं, और सुंदरी अधूरा शृंगार लिए हुए उनके वापस लौट आने की प्रतीक्षा में बैठी रहती है। इस अंक में सुंदरी की चरित्र-रेखाएँ और स्पष्ट होती हैं, और नंद के मन की दुविधा और द्वंद्व स्पष्ट होने लगता है। नंद हाथ में दर्पण लिए सुंदरी के शृंगार में योग दे रहा है। इतने में नेपथ्य में 'धम्मं शरणं गच्छामि' का स्वर सुनाई देता है। सुंदरी कहती है: "देखिए दर्पण हिल गया।" इस अंक का शृंगार-प्रसंग बड़ा ही कोमल और सरस है—हिंदी नाटक-साहित्य में नितांत नया।

तीसरे अंक का आरंभ नंद के लिए सुंदरी की आकुल प्रतीक्षा के साथ होता है। कमलताल के राजहंस उड़कर चले गए हैं। लंबी प्रतीक्षा के बाद जब नंद सिर मुड़ाए हुए भिक्षु-वेश में आता है तो सुंदरी थककर सो चुकी है। नंद कहता है: "मैंने कहा था तुम्हारा विशेषक सूखने से पहले ही मैं लौट आऊँगा, परंतु नहीं आ सका। तुम पूछतीं तो मैं क्या उत्तर देता।" और कुछ देर बाद वहीं पड़े हुए टूटे दर्पण के सामने रुककर अपना प्रतिबिंब उसमें देखता है, और कहता है: "मेरे केश क्यों कटवा दिए? और कटवा ही दिए तो उससे क्या अंतर पड़ता है? अंतर पड़ता यदि मेरा हृदय बदल जाता, आँखें बदल जातीं। मेरे हृदय में तुम्हारे लिए अब भी वही अनुराग है, आँखों में तुम्हारे रूप की अब भी वही छाया है। तुम्हारा विशेषक जो सूख गया है, उसका मुझे खेद है। उसे मैं अभी गीला कर देता हूँ।" और जैसे ही नंद उँगली में लेप लेकर सुंदरी के माथे पर बिंदु बनाने लगता है, वह मुंडित आकृति को देखकर चीख उठती है।

नंद इस स्थिति में अपने को नितांत असहाय और अकेला पाता है। वह कहता है: "मैं चौराहे पर खड़ा एक नंगा व्यक्ति हूँ, जिसे सभी दिशाएँ लील लेना चाहती हैं और अपने को ढकने के लिए उसके पास कोई आवरण नहीं है।" और वह इसी मानसिक यातना में सुंदरी से बिना मिले ही चला जाता है। राज-कर्मचारी श्वेतांग सुंदरी को बताता है कि कुमार यह कहते हुए चले गए कि वे अपने केशों की खोज में जा रहे हैं। वे तथागत से पूछना चाहते हैं कि उन्होंने उनके केशों का क्या किया? उनकी पत्नी को केशों की आवश्यकता है। इस पर सुंदरी वितृष्णा में कहती है: "इतना ही तो समझ पाते हैं ये लोग। बस इतना ही तो इनको समझ में आता है।" और नाटक का अंत श्यामांग के इस संवाद से होता है: "बस एक किरण, केवल एक किरण।"

यह अंक नाटकीय कथा को तेजी के साथ आगे बढ़ाता है और द्वंद को गहन कर देता है। ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं जो नाटक को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा देती हैं, और कथा के चरम बिंदु पर ही नाटक समाप्त हो जाता है। अपने संबंधों और परिस्थितियों से लड़ते हुए टूटे और खंडित पात्रों की विषम स्मृतियाँ मन पर छा जाती हैं। जिस सुंदरी ने कहा था कि 'नारी का अपकर्षण पुरुष को गौतम बुद्ध बना देता है', वही सुंदरी नंद को भिक्षु-वेश में देखकर अपनी इस भारी पराजय से विक्षुब्ध हो उठती है। और नंद सुंदरी के इस गहरे विक्षोभ को नहीं समझता; वह अपनी पत्नी के संतोष के लिए अपने सोभा-केश लाने चला जाता

है। इसी अत्यंत विषम बिंदु पर नाटक समाप्त होता है।

(3)

लहरों के राजहंस आधुनिक यथार्थवादी नाट्य-रचना पद्धति पर लिखा गया है, और उसमें इसी पद्धति के व्यवहारों और रूढ़ियों का पालन किया गया है। एक ही दृश्यबंध (Set) पर नाटकीय कथा घटित होती है, और कथा का विभाजन तीन अंकों में किया गया है; अंकों को दृश्यों में नहीं विभाजित किया गया। यथार्थवादी नाट्य-रचना पद्धति में एक दृश्यबंध और तीन अंकोंवाले नाटकों का विकास आधुनिक रंगमंच के स्वरूप और प्रदर्शन की परिस्थितियों तथा साधनों के कारण हुआ है, और उसके पीछे एक शिल्पगत अनिवार्यता है। भारी-भरकम और ठोस पदार्थों से निर्मित यथार्थवादी दृश्यबंध को बदलने की कठिनाई से बचने के लिए ही इस शैली के नाटक ने अपने लिए एक दृश्यबंध स्वीकार कर लिया है। नाटकीय कथा के तीन प्रमुख संचरणों—कथा का उद्घाटन, विकास तथा चरमोत्कर्ष—के आधार पर ही इस शैली के नाटकों में तीन अंकों का विधान रहता है। प्रत्येक अंक कथा के एक उत्कर्ष-बिंदु पर समाप्त होता है, क्योंकि अंक की समाप्ति पर यवनिका गिराने की व्यवस्था है। नाटक का अंत कथा के चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर उसके तुरंत बाद हो जाता है।

एक ही स्थान पर नाटक की सभी घटनाएँ दिखाकर नाटककार ने स्थान-अन्विति का पूरी तरह पालन किया है। स्थान-अन्विति के साथ-साथ इस नाटक में काल और व्यापार की अन्वितियों का भी पालन किया गया है। नाटक में घटनास्थलों तथा पात्रों की मनोदशाओं का परिचय देनेवाले रंग-निर्देश भी यथार्थवादी नाट्य-पद्धति के अनुसार ही रखे गए हैं। इस प्रकार यह नाटक एक विशेष रचना-पद्धति और शिल्प-विधान के अनुसार एक सुगठित और तर्क-संगत रूपबंध (Structure) का निर्माण करता है। लेकिन नाटक में दो प्रसंगों की योजना इस रूप में की गई है कि उससे इसका रूपबंध कमजोर होता है। इन दोनों प्रसंगों—श्यामांग प्रसंग और नंद-दीक्षा तथा उसके प्रत्यावर्तन का प्रसंग—का विश्लेषण इस नाटक के रूपबंध के स्वरूप को समझने के लिए उपयोगी होगा।

नाटक की वस्तु-योजना और उसके संबंध में श्यामांग प्रसंग का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यह प्रसंग कई प्रकार से और कई स्तरों पर नाटक की मुख्य कथा और उसके मूल संघर्ष से जुड़ा हुआ है। अतः नाटक के आशय और उसके

रूप-शिल्प को समझने के लिए इस प्रसंग के स्वरूप को समझना आवश्यक है। इस संबंध में सबसे बड़ी बात यह है कि यह प्रसंग और इसका प्रयोजन उस शैली के नाटकों के गौण कथानक से भिन्न है, जिनमें मुख्य कथानक के साथ-साथ गौण कथानक चलता रहता है और जो नाटक के समूचे रूपबंध में समन्वित होकर कथानक की बुनावट का अंग नहीं बन पाता; और जो अपनी स्वतंत्र सत्ता के साथ केवल मूल कथानक का प्रतिरूप प्रस्तुत करके नाटकीय संघर्ष के एक प्रकार के कृत्रिम और अविश्वसनीय स्तर की सृष्टि करता है। गौण कथानक की ऐसी स्वतंत्र और असंबद्ध सत्ता कथानक की एकता और प्रभाव को विघटित करती है। **लहरों के राजहंस** में श्यामांग प्रसंग नाटक के पूरे रूपबंध का ही अंग है, और वह नाटक की मुख्य कथा-वृत्ति और द्वंद्व-भाव को ही अधिक तीव्र बनाता है; अपना स्वायत्त अस्तित्व नहीं निर्मित करता।

लेकिन श्यामांग प्रसंग नाटकीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होकर भी दर्शक की रुचि और नाटक के सहज प्रभाव में बाधक बनता है। इसका कारण यह है कि श्यामांग की चरित्रगत अवधारणा और उसके कार्यों और कथनों के मंतव्य स्पष्ट नहीं हैं, और ऐसा लगता है कि उनके संबंध में नाटककार दुविधाग्रस्त है। आरंभ में लगता है कि श्यामांग और अलका का अत्यंत सहज, कोमल और मौन पारस्परिक आकर्षण सुंदरी और नंद के उद्दाम, मुखर और कामसिक्त प्रेम का ही एक प्रतिरूप है। इस प्रकार यह प्रसंग एक निश्चित नाटकीय प्रयोजन की सिद्धि की चेष्टा करता है। और फिर बाद में यही श्यामांग नंद के अस्थिर और द्वंद्व-जर्जर मन का एक प्रतिरूप बन जाता है, और अपने ज्वर-प्रलाप में जैसे नंद की ही अनिश्चितता, विभ्रम और अकुलाहट को ध्वनित करता है। जब वह कमलताल में दिखाई देनेवाली छाया से डरता है, तब जैसे कि नंद ही बुद्ध की छाया से डर रहा हो। दूसरे अंक के प्रारंभ में एक स्वर श्यामांग का नेपथ्य से उभरता है और उधर नंद अपने मन की उद्विग्नता के कारण रात गए तक जाग रहा है। ये दोनों स्वर एक-दूसरे से टकराते हैं और एक-दूसरे को काटते हैं। और तब ऐसा लगता है, जैसे कि नंद ही रंगमंच पर अनिद्रा में अशांत बैठा है, और नंद ही नेपथ्य से प्रलाप कर रहा है: "कोई स्वर नहीं है···कोई किरण नहीं है···एक छाया है···अँधेरे कूप में भटकती हुई छाया।"

इस प्रकार नाटककार एक साथ ही जैसे श्यामांग से दो काम लेना चाहता है और दो प्रयोजनों की सिद्धि चाहता है। श्यामांग के चरित्र का यही विरोधाभास

इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रसंग की नाटकीय शक्ति को क्षीण कर देता है। और इसी कारण अलका का अत्यंत प्रयोजनशील और स्पष्ट चरित्रांकन भी पूरी तरह से विकसित नहीं हो पाता।

नाटक में आरंभ में ही श्यामांग से हमारा परिचय हो जाता है। वह नितांत सामान्य जगतधर्मा व्यक्ति नहीं है। वह विचारवान् है, अंतर्मुखी है, और बाह्य यथार्थ के साथ नहीं बँध पाता। वह कमलताल में एक छाया देखता है और उस पर पत्थर फेंकता है। इस अपराध में उसे अंधकूप में डाल दिया जाता है। बाद में उसे मुक्त कर दिया जाता है। इसके पश्चात् हम उसे रंगमंच पर नहीं देखते; केवल उसका ज्वर-प्रलाप सुनते हैं। यह प्रलाप नंद के ही मन का संघर्ष ध्वनित करता है। ऐसी स्थिति में श्यामांग एक सक्रिय पात्र के रूप में मर जाता है, और अपने प्रसंग और उन मूल्यों से पूरी तरह से कट जाता है जो नाटकीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थे, क्योंकि वे नाटकीय कथा की मुख्य भाव-भूमि और उसके संघर्ष-भाव का प्रतिपक्ष प्रस्तुत करते थे। अब उसके संवाद क्रिया-व्यापार का वहन और चरित्र का उद्‌घाटन न करके प्रतीकात्मक, लाक्षणिक वक्तव्य बन जाते हैं। श्यामांग प्रतीक बनकर नाटकीय कथा के सीधे, स्पष्ट द्वंद्व को केवल अस्पष्ट नहीं बनाता, बल्कि वह नाटक के वस्तु-विधान और रूपबंध को भी कमजोर करता है। नेपथ्य से श्यामांग के स्वर का जिस प्रकार संगीत-खंडों के समान प्रयोग किया गया है, वह प्रदर्शन को भी कमजोर और कृत्रिम बना देगा।

नंद के दीक्षित होने की घटना वस्तु-विज्ञान की दृष्टि से नाटक में एक बहुत कमजोर कड़ी है। सुंदरी तथागत से मिलकर नंद के वापस आने की आकुल प्रतीक्षा करते-करते उनींदी हो जाती है। इतने में श्वेतांग आता है। अलका उससे नंद के संबंध में पूछती है। श्वेतांग अलका को नंद के भिक्षु बनने की सारी कथा कह सुनाता है, और बताता है कि लोगों का कहना है कि उसके बाद वे विक्षुब्ध होकर घने जंगल की ओर चले गए। इस पर अलका किसी बड़े अनिष्ट की आशंका से डरकर सुंदरी को जगाने लगती है, और तभी भिक्षु-वेश में नंद का प्रवेश होता है। अलका और श्वेतांग के वार्तालाप के माध्यम से नाटककार ने दर्शकों को यह तो बता दिया कि जो नंद नदी-तट पर तथागत के पास अपनी धृष्टता के लिए क्षमा-याचना करने गए थे, वे वहाँ जाकर भिक्षु बन गए हैं; किंतु नाटकीय प्रभाव की दृष्टि से इसका परिणाम यह होता है कि जब नंद सचमुच

भिक्षु-वेश में प्रगट हो जाते हैं तो दर्शकों पर वह तीव्र और वांछित प्रभाव नहीं पड़ता जोकि ऐसी स्थिति में पड़ना चाहिए।

इसी प्रसंग की एक और दुर्बल कड़ी नंद के साथ भिक्षु आनंद का आना है। उनके आने का कोई स्पष्ट और सार्थक प्रयोजन नहीं है। नाटककार भिक्षु आनंद को शायद इसलिए नंद के साथ लाता है, जिससे कि उसे इस बात की सुविधा मिल जाए कि वह नंद के मन के उद्वेग को स्वगत कथनों के स्थान पर नाटकीय संवादों में व्यक्त कर सके। भिक्षु आनंद का नंद के साथ आने का पर्याप्त कारण न होने से यह दृश्य-खंड अस्वाभाविक और कथा-धारा से विलग लगता है; और आनंद का चरित्र भी नितांत सामान्य हो गया है।

नंद का दीक्षित होना रंगमंच पर नहीं दिखाया गया, केवल उसके बारे में दर्शकों को सूचना दी जाती है; क्योंकि ऐसा करने में घटनास्थल बदलता था, जिसके कारण प्रदर्शन में दृश्यबंध भी बदलना पड़ जाता। इस शिल्पगत कठिनाई के अतिरिक्त शायद वैसे भी नाटककार ने रंगमंच पर प्रस्तुत किए जाने-वाले दृश्यों में इस दृश्य को सम्मिलित करना वांछित न समझना हो। घटनाओं और दृश्यों का चुनाव और उनकी योजना निश्चित करने में नाटककार के लिए यह निर्णय अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है कि वह कथा के किन अंशों और किन दृश्यों को पात्रों के द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत करेगा और किनके संबंध में केवल संवादों के द्वारा दर्शकों को वांछित सूचनाएँ देगा। नंद का दीक्षित होना इस नाटकीय कथा की एक ऐसी घटना है जिसका रंगमंच पर पात्रों के द्वारा प्रस्तुतीकरण आवश्यक है, भले ही उसका निर्वाह नाटककार और निर्देशक दोनों के लिए ही कठिन हो जाए, और भले ही उसके कारण स्थान-अन्विति खंडित होती हो। वास्तव में, यही व्यापार-खंड इस कथा का चरम-बिंदु है, और इसी में कथा का मूल द्वंद्व अपनी पूरी अभिव्यक्ति पाता है। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि यदि यह घटना रंगमंच पर प्रस्तुत की जाए तो संभवतः नाटक की वस्तु-योजना का रूप ही भिन्न होगा। मैं समझता हूँ कि हमारे नाटककारों को ऐसे कथानक लेकर कुछ ऐसे ही सशक्त प्रयोग करने होंगे, तभी नया नाटक एक दृश्यबंध और तीन अंकोंवाले नाटकों के संकुचित रूप-विधान से मुक्त हो सकेगा और उसमें महाकाव्योचित व्यापकता और विस्तार आ सकेगा। इस संदर्भ में एक ओर तो जर्मनी के प्रसिद्ध नाटककार ब्रेख्त के नाटकों और दूसरी ओर अपनी ही संस्कृत और लोक नाट्य-परंपराओं का उल्लेख किया जा सकता

है, जिनमें नाटकीय कथा और पात्रों को अन्वितिधर्मी ऋजु रेखा में प्रस्तुत न करके कई स्तरों और कई धरातलों पर प्रस्तुत किया जाता है।

नाटक के अंत के संबंध में भी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है। नंद जब भिक्षु बनकर वापस लौटता है तो वह सुंदरी से बिना मिले ही लौट जाता है। इस प्रकार आकर लौट जाने के ही कथा-अभिप्राय का अनुसरण लेखक ने **आषाढ़ का एक दिन** में भी किया है। पात्रों को इस प्रकार के साक्षात्कार से बचाकर नाटककार कथा में एक प्रकार की रहस्य-भावना का समावेश कर देता है, और उसकी अत्यंत तीव्र और प्रत्यक्ष नाटकीय संभावनाओं को कमजोर कर देता है। और फिर जिस प्रकार नाटक का अंत होता है, उसमें नंद और सुंदरी का अंतर्द्वंद्व जैसे सहसा अपनी भूमि और अपना अर्थ खो देता है। और तब लगने लगता है कि पात्र अपनी परिस्थितियों और अपनी नियति से पूरी शक्ति और आस्था के साथ अंत तक नहीं लड़ सके। इस प्रकार की अनुभूति नाटक के दर्शकों के लिए सबसे अधिक घातक सिद्ध होती है।

नाटक के संवाद सुगठित, प्रयोजनशील और काव्य-श्री से समृद्ध हैं। छोटे-छोटे, सुघड़ और काव्यपूर्ण नाटकीय संवाद लिखने में मोहन राकेश अत्यंत कुशल हैं। **आषाढ़ का एक दिन** में उन्होंने मल्लिका के स्वगत कथन बहुत ही सुंदर लिखे हैं। पाठकों और दर्शकों—दोनों ने ही इन स्वगत कथनों में रस लिया; भले ही हिंदी के नाट्य-समीक्षक ने स्वगत कथनों को नाटकों से वर्जित कर रखा हो। इस नाटक में सुंदरी का श्रृंगार-प्रसंग पढ़कर स्कंदगुप्त और देवसेना का प्रणय-प्रसंग याद आ जाता है।

मोहन राकेश ने अपने पहले नाटक **आषाढ़ का एक दिन** में कोई तीन दशकों के बाद नाटक में फिर से उस काव्य-तत्त्व और उन साहित्यिक गुणों को प्रतिष्ठित किया था, जिनको प्रसाद के बाद यथार्थवादी नाट्य-परंपरा ने नाटक से निर्वासित कर दिया था। **आषाढ़ का एक दिन** कई स्थानों और कई प्रदर्शन-शैलियों में रंगमंच पर सफलता के साथ खेला गया, और **स्कंदगुप्त, कोणार्क** तथा **अंधा युग** की परंपरा में एक श्रेष्ठ नाट्य-कृति स्वीकार हुआ। आशा है कि **लहरों के राजहंस** भी इसी परंपरा में स्थान पाएगा तथा अध्ययन-कक्षों और रंगशालाओं में हिंदी के पाठक और दर्शक दोनों को ही रस देगा।

—डॉ. सुरेश अवस्थी

• •

'आषाढ़ का एक दिन' के बाद यह मेरा दूसरा नाटक है।

पहले नाटक के विषय में कई तरह के विवाद उठे; उसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता को लेकर, रंगमंचीय संभावनाओं को लेकर और सबसे अधिक कालिदास के चरित्र को लेकर। रंगमंचीय संभावनाओं को लेकर जो आशंकाएँ थीं, उनका उत्तर काफ़ी हद तक अब तक दिया जा चुका है। दिल्ली, कलकत्ता, लखनऊ, इलाहाबाद, नागपुर, कानपुर, ग्वालियर तथा कई अन्य स्थानों पर उसे सफलतापूर्वक खेला गया है। अलकाजी-जैसे निर्देशक तथा अनामिका-जैसी संस्था ने उसे लेकर सर्वथा अलग-अलग दृष्टियों से प्रयोग किए हैं। आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों से सभी भारतीय भाषाओं में उसे प्रसारित किया गया है।

कालिदास के चरित्र को लेकर जो आपत्तियाँ उठाई गईं, वे कुछ लोगों के पूर्वग्रह को ही व्यक्त करती हैं। शोधकों का एक वर्ग है जिसने कालिदास और मातृगुप्त को एक ही व्यक्ति माना है। इसी आधार पर प्रसाद ने 'स्कंदगुप्त' में कालिदास के चरित्र की कल्पना की है। एक ऐसा भी वर्ग है जो इसकी प्रामाणिकता में विश्वास नहीं करता, परंतु कालिदास के जीवन के संबंध में कितने प्रामाणिक तथ्य आज तक हमें उपलब्ध हैं? जितनी सामग्री है, वह एक-न-एक अनुमान पर ही आधारित है। कुछ लोगों को अपने अनुमान अधिक प्रामाणिक लगें, यह बात दूसरी है।

एक आलोचक ने लिखा था कि 'कालिदास-जैसे व्रती तपस्वी महात्मा' को नाटक में एक दुर्बल व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। मुझे आश्चर्य

इसलिए हुआ कि वे आलोचक संस्कृत के अच्छे पंडित हैं। 'अभिज्ञान शाकुंतल', 'कुमारसंभव' तथा 'मेघदूत' पढ़कर यदि कालिदास का ऐसा ही चरित्र उनके मन में बनता है, तो क्या कहा जा सकता है ? रूढ़िगत संस्कार ही जहाँ व्यक्ति का विवेक बन जाएँ, वहाँ और आशा करना भी व्यर्थ है। हमारे यहाँ परंपरा ही कुछ ऐसी है कि हम अपने जातीय प्रतीकों को सदा अतिमानवीय धरातल पर रखकर देखना चाहते हैं। उनमें मानवीयता का निदर्शन हमें चोट पहुँचाता है। इसका मुख्य कारण शायद यही है कि हमें स्वयं अपनी मानवीयता में विश्वास नहीं है, अपने यथार्थ में आस्था नहीं है। क्योंकि अपने से कुछ आशा नहीं होती, इसलिए यह बात असंभव प्रतीत होती है कि मानवीय धरातल पर रहकर भी जीवन में कुछ महान् किया जा सकता है। केवल उसी धरातल पर रहकर किया जा सकता है, यह तो शायद सुनने में भी बहुत भारी पड़े।

'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास का जैसा भी चरित्र है, वह उसकी रचनाओं में समाहित उसके व्यक्तित्व से बहुत हटकर नहीं है; हाँ आधुनिक प्रतीक के निर्वाह की दृष्टि से उसमें थोड़ा परिवर्तन अवश्य किया गया है। यह इसलिए कि कालिदास मेरे लिए एक व्यक्ति नहीं, हमारी सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक है, नाटक में वह प्रतीक उस अंतर्द्वंद्व को संकेतित करने के लिए है जो किसी भी काल में सृजनशील प्रतिभा को आंदोलित करता है। व्यक्ति कालिदास को उस अंतर्द्वंद्व में से गुजरना पड़ा या नहीं, यही बात गौण है। मुख्य बात यह है कि हर काल में बहुतों को उसमें से गुजरना पड़ा है, हम भी आज उसमें से गुजर रहे हैं। हो सकता है व्यक्ति कालिदास का यह नाम भी वास्तविक न हो, पर हमारी आज तक की सृजनात्मक प्रतिभा के लिए इससे अच्छा दूसरा नाम, दूसरा संकेत, मुझे नहीं मिला।

'आषाढ़ का एक दिन' का कालिदास दुर्बल नहीं है; कोमल, अस्थिर और अंतर्द्वंद्व से पीड़ित है। विलोम जो अपेक्षया सबल प्रतीत होता है, दुराग्रह की आक्रामक शक्तियों को संकेतित करता है। वह व्यक्ति अपने अंतर्द्वंद्व को खा चुका है, इसलिए अपेक्षया अधिक संयोजित है। आशा और आस्था से हताशा और अनास्था का स्वर प्रकट रूप से अधिक बलवान होता है; अपनी स्थापना के लिए उसकी आंतरिक अपेक्षा ही ऐसी होती है। आशा और आस्था की शक्तियाँ

अपनी कोमलता में निर्बल प्रतीत हों, फिर भी कथ्य यही है कि बर्बर शक्तियों के हाथों वे पराजित नहीं होतीं। 'आषाढ़ का एक दिन' में पराजित व्यक्ति टूटा हुआ कालिदास नहीं, अपने में संयोजित विलोम है—क्योंकि विजय और पराजय के संकेत वे दोनों स्वयं नहीं हैं; संकेत है मल्लिका जो कालिदास की आस्था का विस्तारित रूप है। मल्लिका का चरित्र एक प्रेयसी और प्रेरणा का ही नहीं, भूमि में रोपित उस स्थिर आस्था का भी है जो ऊपर से झुलसकर भी अपने मूल में विरोपित नहीं होती।

इतिहास या ऐतिहासिक व्यक्तित्व का आश्रय साहित्य को इतिहास नहीं बना देता। इतिहास तथ्यों का संकलन करता है, उन्हें एक समय तालिका में प्रस्तुत करता है। साहित्य का ऐसा उद्देश्य कभी नहीं रहा। इतिहास के रिक्त कोष्ठों की पूर्ति करना भी साहित्य का उपलब्धिक्षेत्र नहीं है। साहित्य इतिहास के समय से बँधता नहीं, समय में इतिहास का विस्तार करता है; युग से युग को अलग नहीं करता, कई-कई युगों को एक साथ जोड़ देता है। इस तरह इतिहास के 'आज' और 'कल' उसके लिए 'आज' और 'कल' नहीं रह जाते, समय की असीमता में कुछ ऐसे जुड़े हुए क्षण बन जाते हैं जो जीवन को दिशा-संकेत देने की दृष्टि से अविभाज्य हैं। इस तरह साहित्य में इतिहास अपनी यथातथ्य घटनाओं में व्यक्त नहीं होता, घटनाओं को जोड़नेवाली ऐसी कल्पनाओं में व्यक्त होता है जो अपने ही एक नए और अलग रूप में इतिहास का निर्माण करती हैं। यह निर्माण रूढ़िगत अर्थ में इतिहास नहीं है। उस इतिहास की खोज के लिए इतिहास की शोध-पुस्तकों की ओर ही जाना चाहिए।

प्रस्तुत नाटक का आधार भी ऐतिहासिक है, परंतु उतने ही अर्थ में जितना इस व्याख्या में आता है। कथा का आधार अश्वघोष का 'सौंदरनंद' काव्य है, परंतु समय के विस्तार में स्थितियों का परिक्षेपण करने के कारण यह काल्पनिक भी है। काल्पनिक अश्वघोष का सौंदरनंद भी है, क्योंकि संस्कृत तथा पालि साहित्य में जो कथा उपलब्ध थी, उसका अश्वघोष ने अपनी दृष्टि से परिक्षेपण किया है, एक काल्पनिक अन्विति से उसे विस्तार दिया है। 'धम्मपद' की टीका में नंद और सुंदरी की जो कथा है, 'सौंदरनंद' की कथा प्रभाव और विस्तार में उससे कहीं आगे जाती है। 'सौंदरनंद' में नंद और सुंदरी के जीवन के जो तथ्य

हैं, उनके जीवन के सीमित ऐतिहासिक तथ्यों से वे कहीं भिन्न हैं; शोधग्रंथों के 'प्रामाणिक' तथ्य तो उनके संबंध में उपलब्ध ही नहीं हैं। संस्कृत तथा प्राकृत स्रोतों की कथा में ही बहुत अंतर है। जो स्वतंत्रता 'सौंदरनंद' के लेखक ने उपलब्ध तथ्यों से आगे जाने में ली, वही स्वतंत्रता यदि आज का लेखक 'सौंदरनंद' के तथ्यों से आगे जाने में लेता है, तो पुराणसर्वस्व व्यक्तियों को चौंकना नहीं चाहिए। तथ्यों के इतिहास का संतोष उन्हें दूसरी जगह मिल सकता है; उसकी उन्हें यहाँ खोज नहीं करनी चाहिए। यहाँ नंद और सुंदरी की कथा एक आश्रय-मात्र है, क्योंकि मुझे लगा कि इसे समय में परिक्षेपित किया जा सकता है। नाटक का मूल अंतर्द्वंद्व उस अर्थ में वहाँ भी आधुनिक है जिस अर्थ में 'आषाढ़ का एक दिन' के अंतर्गत है। रंगमंच पर नाटक कैसा उतरेगा, यह अभी कैसे कहा जा सकता है? 'आषाढ़ का एक दिन' की तरह प्रकाशन से पहले उस दृष्टि से इसकी भी परीक्षा नहीं की जा सकी। आशा करना चाहता हूँ कि उस प्रयोग की तरह यह प्रयोग भी अपनी स्थापना कर सकेगा। हाँ, दिल्ली के तथाकथित 'हिंदी रंगमंच' (वस्तुतः 'अंग्रेजी-पंजाबी रंगमंच') की अपेक्षाओं की पूर्ति इससे न हो, तो मैं अपने को दोषी नहीं मानूँगा। ऐसे किसी रहस्य का बीज इस नाटक में नहीं है जो तीसरे अंक के अंत में जाकर खुलता हो। दिल्ली के कुछ एक स्वनामधन्य निर्देशकों के मन में नाटक की जो कल्पना है, उसकी पूर्ति उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय नाटकों से ही हो सकती है। जो थोड़े और आधुनिक हैं, आर्थर मिलर और टेनेसी विलियम्ज़ के नाटकों से। संस्कृत क्लासिक्स से भी कभी-कभी उनका काम चल सकता है, जबकि उनके अंग्रेजी अनुवाद का उर्दू में अनुवाद करनेवाले लोग मिल जाएँ और उर्दू अनुवाद का कोई रेडियो आर्टिस्ट 'स्टेज एडाप्टेशन' तैयार कर दे। इसके अलावा कुछ 'शैडो प्लेज़' वे खुद भी लिख सकते हैं।

—मोहन राकेश

सोऽनिश्चयान्नापि ययो न तस्थौ तरंस्तरंगेष्विव राजहंसः ।

—अश्वघोष

पात्र

कर्मचारी	श्वेतांग
	श्यामांग
नंद की पत्नी	सुंदरी
दासी	अलका
गृहाधिकारी	शशांक
बुद्ध का सौतेला भाई	नंद
नंद का एक मित्र	मैत्रेय
दासी	नीहारिका
बुद्ध का शिष्य	भिक्षु आनंद

स्थान, समय

अंक 1

कपिलवास्तु। राजकुमार नंद के भवन में सुंदरी का कक्ष।
रात उतरने का समय।

अंक 2

वही कक्ष। प्रत्यूष से कुछ पहले।

अंक 3

वही कक्ष। अगली रात।

अंक 1

दाईं ओर गोलाकार चबूतरा। सुंदर बिछावन, तकिए। पीछे एक ऊँचा दीपाधार; शिखर पर पुरुषमूर्ति—बाँहें फैली हुई तथा आँखें आकाश की ओर उठी हुईं। बाईं ओर एक झूला और उससे थोड़ा हटकर एक मत्स्याकार आसन। आसन के पास ही मदिराकोष्ठ। इसी ओर मंच के आगे के भाग में एक छोटा दीपाधार; शिखर पर नारीमूर्ति—बाँहें संवलित तथा आँखें धरती की ओर झुकी हुईं।

दाईं ओर आगे के कोने में शृंगारकोष्ठ। खुले भाग में डोरी से बँधी पत्तियों का ढेर।

एक द्वार सामने; खुला होने पर पीछे के गवाक्ष दिखाई देते हैं। दूसरा द्वार दाईं ओर; अंदर के कक्षों में जाने के लिए। तीसरा बाईं ओर; मत्स्याकार आसन और दीपाधार के बीच, बाहर उद्यान में जाने के लिए।

पर्दा उठने पर मंच पर दो व्यक्ति हैं, श्वेतांग और श्यामांग। श्वेतांग अग्निकाष्ठ से बड़े दीपाधार के दीपक जला रहा है। श्यामांग पत्तियों के ढेर में उलझा हुआ उन्हें सुलझाने का प्रयत्न कर रहा है।

श्वेतांग : ***(कार्य में व्यस्त)***

तुम्हारी उलझन अभी समाप्त नहीं हुई ?

श्यामांग : *(पत्तियों को तोड़ने-सुलझाने में व्यस्त)*
मुझे तुमसे ईर्ष्या होती है।

श्वेतांग :
मुझसे ईर्ष्या होती है? क्यों?

श्यामांग :
देखो न एक के बाद एक दीपक जलता जाता है। न कुछ उलझता है, न कुछ बिखरता है।

श्वेतांग :
इसका कारण है।

श्यामांग :
कारण है? क्या कारण है?

कुछ पत्तियाँ हाथों में लिए हुए श्वेतांग के पास चला जाता है।

मेरे हाथों में काम उलझ क्यों जाता है?

श्वेतांग : *(उसी तरह व्यस्त)*
इसलिए कि तुम सोचते बहुत हो।

श्यामांग :
सोचता बहुत हूँ? पर उससे क्या होता है?

श्वेतांग :
सब-कुछ उसी से होता है। हाथ काम नहीं करते, आँखें चुँधिया जाती हैं।

श्यामांग पल-भर आँखें झपकता रहता है।

श्यामांग :
हाथ काम नहीं करते, आँखें चुँधिया जाती हैं। तो तुम···तुम कभी कुछ नहीं सोचते?

श्वेतांग पल-भर अग्निकाष्ठ की ओर देखता रहता है, फिर जैसे अतीत से होकर लौटता है।

श्वेतांग :

अब नहीं सोचता। पहले सोचा करता था।

श्यामांग :

पहले सोचा करते थे!···और सोचने का परिणाम यह हुआ कि···!

श्वेतांग :

सोचना छोड़ दिया।

श्यामांग : *(सोचता-सा)*

सोचना छोड़ दिया!

श्वेतांग :

आदमी काम करना चाहे तो उपाय यही है, राज-कर्मचारी के लिए विशेष रूप से।

एक बार सीधी नजर से श्यामांग को देखकर फिर काम करने लगता है।

श्यामांग :

तुम कहना चाहते हो कि···कि मुझे भी···सोचना नहीं चाहिए। यही न?···पर मैं···मैं कब सोचना चाहता हूँ? बिना चाहे मस्तिष्क सोचता रहे, सोचता रहे, तो आदमी क्या कर सकता है?

श्वेतांग :

बिना चाहे तो मस्तिष्क सोचता ही रहता है। न सोचने के लिए वैसा चाहना पड़ता है प्रयत्न करना पड़ता है।

श्यामांग :

अब इसके लिए भी प्रयत्न करना पड़ता है! प्रयत्न आदमी से न बन पड़े तो···?

श्वेतांग :

तो सब-कुछ उलझता रहता है। अपने हाथों में देख लो।

श्यामांग असहाय दृष्टि से पत्तियों को देखता है।

श्यामांग :

इसका अर्थ है कि वह पत्तियों का ढेर···।

उस ओर संकेत करता है।

श्वेतांग :

तुम्हारे हाथों कभी नहीं सुलझेगा। लाओ, मुझे दो, मैं सुलझा देता हूँ। *(अग्निकाष्ठ उसे देकर)* तुम दीपक जलाओ।

जाकर पत्तियाँ सुलझाने लगता है। श्यामांग अग्निकाष्ठ हाथ में लिए उसे काम करते देखता रहता है।

श्यामांग :

देखो, श्वेतांग! एक बात मेरी समझ में नहीं आ रही···।

श्वेतांग :

तुमसे कोई भी बात समझने को कहा किसने है? जल्दी से दीपक जलाओ, देवी सुंदरी अभी इधर आनेवाली हैं। आकर देखेंगी कि दीपक नहीं जले, तो बिगड़ उठेंगी। वर्षों के बाद आज उन्होंने कामोत्सव का आयोजन किया है···।

श्यामांग : *(उसके पास आता हुआ)*

यही बात तो मेरी समझ में नहीं आ रही। क्यों आज ही वर्षों के बाद···?

श्वेतांग :

तुम फिर बहक रहे हो। तुमसे कहा है न दीपक जलाओ।

श्यामांग :

वह तो तुमने कहा है। मगर मैं सोचता हूँ···।

नेपथ्य से सुंदरी के शब्द सुनाई देते हैं। श्यामांग आगे के दीपाधार के पास जाकर दीपक जलाने लगता है। सुंदरी अलका के साथ बात करती हुई बाईं ओर के द्वार से आती है। श्वेतांग झुककर अभिवादन करता है। श्यामांग भी जैसे सहसा याद आने से, बाद में अभिवादन करता है।

सुंदरी :

हाँ, रात के अंतिम पहर तक ! भोज, आपानक और नृत्य। वर्षों तक याद बनी रहनी चाहिए लोगों के मन में।

अलका : ***(अंतर्मुख-सी)***

याद···वर्षों तक···परंतु जाने क्यों मेरे मन में तरह-तरह की आशंकाएँ उठती हैं···।

सुंदरी :

रात बीतने दे, फिर अपने मन से पूछना। रात-भर नगरवधू चंद्रिका के चरणों की गति से इस कक्ष की हवा काँपती रहेगी। हवा काँपती रहेगी, और ढुलती रहेगी मदिरा, उसकी आँखों से, उसके एक-एक अंग की गोराई से। कपिलवास्तु के राज-पुरुष रात-भर उस मदिरा में और अन्यान्य मणि-मदिराओं में डूबते-उतराते रहेंगे। तू देखेगी और विश्वास नहीं कर सकेगी। जो नहीं देखेंगे, वे तो कल्पना भी नहीं कर पाएँगे।

अलका पल-भर श्यामांग की ओर देखती रहती है।

अलका : ***(जैसे सहसा अपने को सहेजकर)***

कल रात-भर मुझे नींद नहीं आई। जब नींद आई, तो···।

सुंदरी :

ठहर, मैं क्या सोच रही थी ?···हाँ, शशांक से कह दिया था न कि इस अवसर के लिए उसे कुछ विशेष मदिराएँ प्रस्तुत करनी हैं ?

अलका :

आपने अब तक आदेश नहीं दिया था। आदेश दें, तो मैं अभी जाकर कह देती हूँ।

सुंदरी :

मैंने अब तक आदेश नहीं दिया था ? इतनी बड़ी बात और इसी के संबंध में आदेश नहीं दिया ? फिर मैंने सोच कैसे लिया कि···? शायद अपने पर बहुत निर्भर करती हूँ।

सोच लेती हूँ कि बात मन में आने से ही पूरी हो जाती है। अभी तक सुगंधियों की भी तो व्यवस्था नहीं हो पाई।...तू जा, पहले शशांक से कह दे। समय बहुत थोड़ा है। पुराने रस और आसव मिलाकर भी वह कई-कई तरह के नए सम्मिश्रण प्रस्तुत कर सकता है।...और उससे कहना, भोज और पान की सारी सामग्री आज उद्यान में सजानी है।

अलका :

अभी जाकर कह देती हूँ।

दाईं ओर के द्वार से चली जाती है।

सुंदरी :

तुम्हारा काम अभी पूरा नहीं हुआ श्वेतांग ?

श्वेतांग :

अभी नहीं देवि ! तोरण सजाने के लिए ये पत्तियाँ...।

सुंदरी :

पत्तियाँ श्यामांग के लिए छोड़ दो और तुम मेरे साथ आओ। तोरणों पर गंधलेप से मुद्राएँ भी तो बनानी हैं। और तुम श्यामांग...!

श्यामांग की ओर देखती है। श्यामांग हाथ रोके जड़-सा खड़ा है।

तुम खड़े-खड़े सोच क्या रहे हो ? कि आग काठ के अंदर है या बाहर ? देखो, चिंतन बाद में करना, पहले जल्दी से दीपक जलाकर पत्तियाँ सजा दो। अतिथियों के आने में अधिक समय नहीं है।...तुम आओ श्वेतांग !

बाईं ओर के द्वार से चली जाती है। श्वेतांग जाते हुए एक बार तरस खाती आँखों से श्यामांग की ओर देख लेता है। उनके चले जाने पर श्यामांग कुछ क्षण ठगा-सा खड़ा रहता है। भाव ऐसा होने लगता है जैसे उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा रहा हो। वह अग्निकाष्ठ को अपने

माथे के पास लाकर इस तरह हिलाता है जैसे उसके अंदर उजाला कर रहा हो। फिर चेष्टा से अपने को सँभालकर दीपक जलाने लगता है।

श्यामांग :

बस कह दिया, तो हो गया ! पत्तियाँ श्यामांग के लिए छोड़ दो ! श्यामांग से पत्तियाँ न सुलझीं, तो कामोत्सव नहीं होगा !···श्वेतांग कहता है कुछ सोचो नहीं।···पर सोचना-न-सोचना अपने बस की बात है ?···पिछले वसंत में आम कैसे बौराये थे ! पेड़ों की डालियाँ अपने-आप हाथों पर झुक आती थीं।···परंतु तब यहाँ कामोत्सव का आयोजन नहीं किया गया। आयोजन किया गया है इस बार···जब आम के वृक्षों ने भिक्षुओं का वेश धारण कर रखा है !···कल प्रातः देवी यशोधरा भिक्षुणी के रूप में दीक्षा ग्रहण करेंगी और यहाँ···यहाँ रात-भर, नृत्य होगा, आपानक चलेगा···!

फिर कुछ क्षण ऐसे ही रहता है जैसे आँखों के आगे अँधेरा घिर आया हो। फिर प्रयत्न से अपने को सँभालता है और घूमकर देखता है कि सब दीपक जल गए हैं या नहीं। उसके बाद अग्निकाष्ठ की ओर इस तरह देखता है जैसे उससे पूछ रहा हो कि अब और क्या करना है।

तुम्हें बाहर छोड़ देना है और आकर पत्तियाँ सुलझानी हैं, यही न ?

अस्थिर भाव से सामने के द्वार से जाकर अग्निकाष्ठ बाहर रख आता है और आकर फिर से पत्तियों में उलझ जाता है।

(अपने से) लो, और सुलझाओ।···जाने इनका सिरा कहाँ है ! एक बार हाथ से छूट जाता है, तो फिर पकड़ में ही नहीं आता।

सिरा नहीं मिलता, तो झुँझलाकर जगह-जगह से डोरी तोड़ने लगता है। दाईं ओर के द्वार से सुंदरी अलका के साथ आती है।

सुंदरी :

तू सपने भी देखती है, तो ऐसे-ऐसे ! सूखा सरोवर, पत्रहीन वृक्ष और धूल-भरा आकाश ! इसका अर्थ यह है कि···।

दृष्टि श्यामांग पर पड़ती है। वह उनके आने से फिर जड़वत् खड़ा हो गया है। अलका जैसे उससे कुछ कहने को होती है, पर चुप रह जाती है।

काम इस तरह होता है, श्यामांग ? खड़े-खड़े सोच क्या रहे हो ? कि डोरियाँ पत्तियों में उलझी हैं या पत्तियाँ डोरियाँ में ?

श्यामांग : ***(जैसे आँखों के आगे आते अँधेरे से बचने की चेष्टा करता हुआ)***

नहीं···मैं सोच···सोच कुछ भी नहीं रहा। चेष्टा कर रहा हूँ कि किसी तरह···किसी तरह ये सुलझ जाएँ और···।

अचानक भारी गुंझल हाथ में आ जाता है। वह हाथ पीछे करके उसे तोड़ता है।

सुंदरी :

हाँ, इसी चेष्टा से तो ये सुलझेंगी ! जाओ, जाकर यह काम किसी ओर को सौंप दो और···।

श्यामांग जैसे बहुत प्रयत्न से आगे सुनने की प्रतीक्षा करता है।

(कुछ शीघ्रता के साथ) और कहीं एकांत में बैठकर सोचो कि जब कोई काम हाथ में न रहे, तो हाथों को क्या करना चाहिए।

श्यामांग उलझी हुई पत्तियों को, फिर अपने हाथों को देखता है। फिर जैसे कुछ भी न सोच पाने से पत्तियों के

ढेर में उलझा हुआ झुककर अभिवादन करता है। बाईं ओर के द्वार से जाते हुए वह एक बार अलका की ओर चुँधियाई-सी आँखों से देख लेता है। सुंदरी पल-भर श्रृंगारकोष्ठ के पास रुकती है, फिर मत्स्याकार आसन पर जा बैठती है।

तू अपने सपने की बात कह रही थी न अलका ?···क्या कह रही थी···क्या देखा था···सूखा सरोवर, पत्रहीन वृक्ष और धूल-भरा आकाश ?

अलका होंठ काटकर सिर हिलाती है और उसके पास चली जाती है।

सुंदरी : ***(उसे सिर से पैर तक देखकर)***

यह भरा-पूरा यौवन और हृदय में धूल-भरा आकाश !··· इसका कुछ उपाय करना होगा।

अलका :

प्रभात में नींद टूटने से पहले देखा था सपना। प्रभात के सपने सच नहीं होते, देवि !

सुंदरी : ***(परिहास के स्वर में)***

सुना है सच होते हैं। इसीलिए तो उपाय करना होगा। नहीं यह न हो कि तू भी कल भिक्षुणी का वेश धारण करने की सोचने लगे।

अलका : ***(कुछ अंतर्मुख)***

मैं और भिक्षुणी का वेश !···नहीं, मैं ऐसी बात नहीं सोच सकती। अभी नहीं···मैं तो यह सोचकर ही सिहर जाती हूँ कि कल···सच, कल भिक्षुणी के वेश में देवी यशोधरा कैसी लगेंगी, देवि ?

सुंदरी : ***(उठती हुई)***

और सब भिक्षुणियाँ कैसी लगती हैं ?

मदिराकोष्ठ के पास चली जाती है।

सोचकर खेद होता है कि इतने वर्ष पीड़ा सहने के बाद भी देवी यशोधरा अपनी पीड़ा का मान न रख सकीं।

पात्र से थोड़ी मदिरा चषक में डाल लेती है।

बहुत सहानुभूति भी होती है।

अलका :

परंतु संभव है देवि···!

सुंदरी :

हाँ, कह, रुक क्यों गई?

अलका :

सोचती हूँ कि संभव है आज वे उन्हें पहले के संबंध से नहीं देखतीं। उनके हृदय में जो पीड़ा थी राजकुमार सिद्धार्थ को लेकर थी। परंतु आज जो लौटकर आए हैं, वे राजकुमार सिद्धार्थ नहीं, गौतम बुद्ध हैं।

सुंदरी :

यही तो दुःख है कि आज वे राजकुमार सिद्धार्थ नहीं हैं। परंतु राजकुमार सिद्धार्थ आज गौतम बुद्ध बनकर आए, इसका श्रेय भी तो देवी यशोधरा को है। नहीं?

मदिरा पीकर चषक रख देती है।

अलका : ***(अचकचाई-सी)***

इसका श्रेय देवी यशोधरा को है? आपका अभिप्राय है कि···।

सुंदरी :

अभिप्राय यही है कि देवी यशोधरा का आकर्षण यदि राजकुमार सिद्धार्थ को बाँधकर अपने पास रख सकता, तो क्या वे आज राजकुमार सिद्धार्थ ही न होते? गौतम बुद्ध बनकर नदी-तट पर लोगों को उपदेश दे रहे होते?

अलका सुनकर जैसे सिहर जाती है।

अलका :

ऐसा नहीं, देवि···!

सुंदरी :

क्यों? यह सच नहीं? राजकुमार सिद्धार्थ क्यों चुपचाप एक रात घर से निकल पड़े थे? बात बहुत साधारण-सी है अलका! नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है, तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।

अलका : *(पल-भर चुप रहकर)*

तो आप यह कहना चाहती हैं कि···।

सुंदरी :

कहना चाहने की बात नहीं, अलका! मैं एक छोटी-सी सचाई तुझे बतला रही हूँ। लोग कहते हैं कि गौतम बुद्ध ने बोध प्राप्त किया है, कामनाओं को जीता है। पर मैं कहती हूँ कि कामनाओं को जीता जाए, यह भी क्या मन की एक कामना नहीं है? और ऐसी कामना किसी के मन में क्यों जागती है?

अलका :

धृष्टता के लिए क्षमा चाहती हूँ, देवि! परंतु···।

सुंदरी :

क्षमा चाहने की आवश्यकता नहीं। बात कहने में धृष्टता नहीं होती। मैं तेरी बात सुनना चाहती हूँ।

अलका :

देवी यशोधरा की बात आप जानें। परंतु प्रजा के बच्चों-बूढ़ों तक में क्यों इतना उत्साह है? वे संध्या होते ही क्यों नदी-तट की ओर उमड़ पड़ते हैं···? क्या इसका अर्थ यही नहीं है कि···?

सुंदरी :

इसका अर्थ इतना ही है अलका, कि बहुत दिन एकतार

जीवन बिताकर लोग अपने से ऊब जाते हैं। तब जहाँ कुछ भी नवीनता दिखाई दे, वे उसी ओर उमड़ पड़ते हैं। यह उत्साह दूधफेन का उबाल है। चार दिन रहेगा, फिर शांत हो जाएगा।

बाहर उद्यान से हंसों का कलरव और पंखों की फड़फड़ाहट सुनाई देती है।

अलका :

पर पहले आज तक कभी···।

सुंदरी :

ठहर, सुन। उतरती रात में राजहंसों का कलरव कैसे मन को खींचता है!

अलका :

आपने ठीक से सुना नहीं, देवि! मुझे ऐसे लगा जैसे···।

सुंदरी :

बोल नहीं! चुपचाप सुन!

कलरव धीरे-धीरे शांत पड़ जाता है।

इस स्वर की कहीं तुलना है? कह नहीं सकती क्या अधिक सुंदर है—ओस से लदे कमलों के बीच राजहंसों के इस जोड़े की किलोल या इस झुटपुटे अँधेरे में दूर से सुनाई देता इनका कूजन! आज पहली बार इन्हें इस समय बोलते सुना है। *(जरा हँसकर)* कोई गौतम बुद्ध से कहे कि कभी कमलताल के पास आकर इनसे भी वे निर्वाण और अमरत्व की बात कहें। ये एक बार चकित दृष्टि से उनकी ओर देखेंगे, फिर काँपती हुई लहरें जिधर ले जाएँगी, उधर को तैर जाएँगे। शायद उस दिन एक बार गौतम बुद्ध का मन नदी-तट पर जाकर उपदेश देने को नहीं होगा। मैं चाहूँगी कि उस दिन···।

इस बीच एकाध बार पानी में पत्थर फेंकने का शब्द सुनाई देता है। फिर एक साथ कई एक पत्थर फेंकने का और उसमें मिला-जुला पंखों की तेज फड़फड़ाहट और हंसों के आहत क्रंदन का शब्द सुनाई देता है। सुंदरी बोलते- बोलते रुक जाती है और उद्विग्न दृष्टि से उद्यान की ओर देखती है।

किसकी धृष्टता है यह ? कमलताल में पत्थर कौन फेंक रहा है ?

अलका :

मैंने पहले भी ऐसा शब्द सुना था। यही मैं आपसे कह रही थी। रात के समय हंस अकारण ही नहीं बोल उठे थे।

हंसों का क्रंदन हल्की-हल्की कराहट में बदलकर धीरे-धीरे रुक जाता है।

सुंदरी :

उद्यान में जाकर देख, कौन है जिसने ऐसी चेष्टा की है! कहना मैं उसे अभी यहाँ बुला रही हूँ।

अलका :

मैं अभी देखती हूँ।

बाईं ओर के द्वार से चली जाती है। सुंदरी उसी तरह उद्विग्न चबूतरे पर बैठ जाती है। कुछ क्षण बाद श्यामांग बाईं ओर के द्वार से आता है। अलका पीछे-पीछे आती है, सिर झुकाए हुए। सुंदरी श्यामांग को देखते ही खड़ी हो जाती है। श्यामांग के चेहरे का भाव बहुत बदल गया है। वह विक्षिप्त-सा नजर आता है।

सुंदरी : ***(आवेशपूर्वक)***

तो तुम थे जो कमलताल में राजहंसों पर पत्थर फेंक रहे थे!

श्यामांग :

नहीं, राजहंसों पर नहीं, देवि···!

अलका सुंदरी के निकट आ खड़ी होती है। उसके चेहरे पर कई तरह के भाव आ-जा रहे हैं।

सुंदरी :

राजहंसों पर नहीं तो किस पर ? ताल में दिखाई देती अपनी छाया पर ?

छाया शब्द के उच्चारण से श्यामांग की आँखों में एक डर-सा लहरा जाता है।

श्यामांग :

छाया पर !···हाँ···परंतु अपनी छाया पर नहीं। वह एक और ही छाया थी···बहुत डरावनी···।

सुंदरी :

बनते क्यों हो ? स्पष्ट बात क्यों नहीं कहते ? *(व्यंग्यपूर्वक)* ···वह एक और ही छाया थी ! जान सकती हूँ कैसी छाया थी वह ?

श्यामांग :

जाने कैसी छाया थी ! ज्यों-ज्यों अँधेरा गहरा हो रहा था, छाया लंबी और लंबी होती जा रही थी···।

सुंदरी :

मैं यह प्रलाप नहीं सुनना चाहती। तुम्हें अँधेरे में बैठकर छायाएँ देखने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं था ?

श्यामांग :

काम ? काम नहीं था। आपने कहा था काम न करने के लिए। कमलताल के पास जो अँधेरा कोना है, कुछ देर के लिए वहाँ चला गया था। वहाँ देखा, ताल की लहरों पर वह छाया उतर रही है। लहरें उसमें गुम हुई जा रही हैं; कमलनाल, कमलपत्र सब उसमें खोए जा रहे हैं। मुझे लगा कि वह छाया धीरे-धीरे उन सबको लील जाएगी, ताल में तैरते हुए राजहंसों के जोड़े को भी। मुझे डर लगा।

मैं छाया पर पत्थर फेंकने लगा।

सुंदरी :

छाया को हटाने के लिए तुम उस पर पत्थर फेंकने लगे ?

श्यामांग :

हाँ, एक पत्थर फेंका, तो लगा छाया हिल रही है। वह हिली, परंतु हटी नहीं···। तभी हंसों के जोड़े ने पंख फड़फड़ा दिए और जैसे छाया से बचने के लिए वे पुकार उठे। मैंने तब उस छाया पर कई पत्थर लगातार फेंके।

सुंदरी : *(और भी आवेश में)*

तुम समझते हो कि मैं इन बेसिर-पैर की बातों पर विश्वास कर लूँगी ?

श्यामांग :

छाया कई टुकड़ों में बँट गई, मगर फिर ज्यों-की-त्यों हो गई। तभी न जाने कैसे उसने राजहंसों को अपने में कस लिया जिससे वे चीत्कार कर उठे···।

अलका इस बीच कभी सुंदरी और कभी श्यामांग की ओर देखती रहती है। सहसा वह आगे आ जाती है।

अलका :

तुम सच क्यों नहीं कह देते कि अनजाने में तुमसे अपराध हो गया है ? अपराध के लिए तुम क्षमा माँग लो, तो···।

श्यामांग :

छाया को हटाना अपराध था क्या ? मैं नहीं जानता था। अपराध था, तो उसके लिए···।

अलका :

क्यों फिर वही बात किए जाते हो ? क्यों नहीं स्पष्ट कह देते कि तुम्हारा मन कहीं और था और तुम्हें पता नहीं चला कि कब तुमने पत्थर उठाए और कब फेंकने लगे ?

श्यामांग :

मेरा मन कहीं और था ? पर ऐसा तो नहीं । मन कहीं और होता, तो मैं छाया को देखता किस तरह और··· ?

सुंदरी आगे आ जाती है ।

सुंदरी :

मुझे विश्वास है सचमुच तुमने छाया देखी है । जब तुम यहाँ काम कर रहे थे, तब भी वही छाया तुम्हारे सिर पर मँडरा रही थी । वही तुम्हें काम नहीं करने देती थी । आज कामोत्सव के आयोजन में वह छाया किसी को भी न घेरती, तो मुझे आश्चर्य होता । उपाय यही है कि कुछ समय के लिए तुम्हें दक्षिण के अंधकूप में उतार दिया जाए । वहाँ वह छाया तुम्हारे पास तक नहीं फटकेगी ।

अलका : ***(सहसा आगे आकर)***

नहीं-नहीं, देवि !

सुंदरी उसकी ओर ध्यान नहीं देती ।

सुंदरी : ***(बात जारी रखती हुई)***

···और तुम्हें भी पूरा अवकाश रहेगा, नहीं ? श्वेतांग तुम्हें तुम्हारे गंतव्य तक पहुँचा आएगा । *(दाईं ओर देखकर)* जो भी द्वार पर हो, श्वेतांग से कह दे, मैं उसे बुला रही हूँ ।

श्वेतांग दाईं ओर के द्वार से आता है ।

श्वेतांग : ***(साभिवादन)***

देवि !

सुंदरी :

सुगंधियों की व्यवस्था हो गई ?

श्वेतांग :

हाँ, देवि !

सुंदरी :

तोरणों पर मुद्राएँ अंकित की जा चुकीं ?

श्वेतांग :

हाँ, देवि !

सुंदरी :

तो एक काम तुम्हें और करना है। तुम्हारा सहयोगी श्यामांग आज एक छाया से पीड़ित है। इसे उस छाया से मुक्त करने के लिए···।

श्यामांग :

छाया वहाँ है देवि, कमलताल पर। जब मैं वहाँ से हटा, तब भी वह···।

श्वेतांग पल-भर ध्यान से श्यामांग को देखता रहता है।

श्वेतांग :

मुझे लगता है, देवि···!

सुंदरी :

तुम्हें जो भी लगता हो, वह आकर कहना। पहले इसे ले जाकर दक्षिण के अंधकूप में छोड़ आओ। वहाँ रक्षकों से कहना···।

श्यामांग :

रक्षक मुझे जानते हैं, देवि ! सब-के-सब मुझसे अच्छी तरह परिचित हैं।

सुंदरी : ***(कुछ क्रोध के साथ)***

खड़े क्यों हो, श्वेतांग ? जाओ और जाकर आदेश का पालन करो।

श्वेतांग आगे बढ़कर श्यामांग को बाँह से पकड़ लेता है।

श्वेतांग :

आओ श्यामांग !

श्यामांग :

मैं तुमसे सच कहता हूँ श्वेतांग, मैं कुछ सोच नहीं रहा था।

सोचना चाहता भी नहीं था। मुझे याद था, तुमने कहा था···।

सुंदरी :

इसे ले जाओ, मैं इसकी अनर्गल बातें और नहीं सुनना चाहती।

श्वेतांग बाईं ओर के द्वार से श्यामांग को बाहर ले चलता है।

श्वेतांग : ***(चलते-चलते)***

मैंने तुमसे कुछ भी नहीं कहा था। तुम यदि समझते हो कि मैंने कुछ कहा था, तो वह तुम्हारे मन की भ्रांति है।

श्यामांग : ***(चलते-चलते)***

तुमने कुछ भी नहीं कहा था? सच, कुछ नहीं कहा था? फिर मुझे कैसे लगा कि तुमने···।

दोनों बाहर चले जाते हैं। श्यामांग के अंतिम शब्द बाहर से सुनाई देते हैं। अलका इस बीच आहत-सी आगे के दीपाधार के पास आ जाती है।

सुंदरी : ***(शृंगारकोष्ठ की ओर बढ़ती हुई)***

मुझे पहले से ही आशंका थी। जानती थी कि··· *(अलका की ओर देखकर)* तुझे क्या हुआ है, अलका? तू इस तरह क्यों खड़ी है?

अलका अपने को सुस्थित करने का प्रयत्न करती है।

अलका :

हुआ कुछ नहीं, देवि! ऐसे ही···।

सुंदरी :

ऐसे ही क्या? तेरे चेहरे से तो लगता है जैसे··· इधर आ मेरे पास।

अलका आँख में आए आँसुओं को पोंछकर उसके पास चली जाती है।

सुंदरी : *(उसका हाथ पकड़कर)*
बता, क्या बात है ?

अलका :
कुछ भी तो नहीं, देवि ! मैं···।

सुंदरी :
मैं जानती हूँ कि तू बहुत भावुक है । तुझे शायद दुःख हुआ है कि आज के दिन···।

अलका :
नहीं, ऐसा नहीं, देवि !

सुंदरी :
तो फिर···तू फिर से अपशकुन की बात सोच रही है ?

अलका :
नहीं, देवि !···मैं सोच रही थी कि जो कुछ हुआ है, वह उसने शायद जान-बूझकर नहीं किया···।

सुंदरी :
तू श्यामांग के लिए कह रही है ?

अलका चुपचाप सिर हिला देती है ।

(कुछ तीव्र होकर) तू समझती है कि सचमुच···?

अलका :
नहीं, देवि ! छाया की बात में मैं विश्वास नहीं करती । पर मैं कई दिन से देख रही हूँ कि···धीरे-धीरे उसे कुछ होता जा रहा है···अपनी मानसिक शक्तियों पर से उसका अधिकार उठता जा रहा है···।

सुंदरी कुछ सोचती-सी उसके पास से हट आती है ।

सुंदरी :
तू कहना चाहती है कि श्यामांग···कि वह उन्माद में यह सब कर रहा था ?

अलका :

उन्माद नहीं तो उससे कम भी नहीं है। कई दिन से देख रही हूँ कि वह···कि वह अपने में ही कहीं खोया जा रहा है···मन में कुछ ग्रंथियाँ उलझ गई हैं और वह···उसे सहानुभूति और उपचार की आवश्यकता है, देवि! मैं कितना चाहती थी कि मैं उसे··· कि उसके लिए कुछ किया जा सके···।

सुंदरी झूले के पास चली जाती है। कुछ सोचती-सी झूले को हिला देती है। फिर उसे हिलता छोड़ स्वयं अलका की ओर लौट आती है।

सुंदरी : ***(जैसे मन में स्थितियों को सुलझाती हुई)***

तो तेरे कहने का अर्थ यह है कि···कहीं तू भी तो उसकी तरह···परंतु नहीं। ऐसा नहीं हो सकता।···तू शायद···।

पास आ उसकी ठोड़ी को छूकर उसका मुँह अपनी ओर कर लेती है।

तू उससे···प्रेम तो नहीं करती?

अलका होंठ काटकर आँखें झुका लेती है। सुंदरी उसके पास से हटकर चबूतरे पर चली जाती है और एक तकिए से टेक लगा लेती है।

मैंने नहीं सोचा था कि तू···पर तू किसी से प्रेम करती है, तो उस तरह के सपने कैसे देखती है?···और श्यामांग!···वह ऐसा व्यक्ति है क्या जिससे···पर शायद यह बात पूछने की नहीं है।···मुझे इस विषय में सोचना होगा···।

अलका अपने को व्यस्त रखने के लिए शृंगारकोष्ठ की सामग्री को सहेजती है। फिर चबूतरे के पास जाकर तकियों की सलवटें निकालने लगती है।

सोचना होगा कि तुझे और उस व्यक्ति को···अच्छा, सुन।

अलका हाथ रोककर उसकी ओर देखती है।

तुझे विश्वास है, तू सचमुच उससे प्रेम करती है ?

अलका अपने आँसुओं को छिपाने के लिए पलकें झपकती हुई आँखें दूसरी ओर हटा लेती है।

और तू चाहती थी कि उसके लिए कुछ किया जाए।

अलका धीरे से सिर हिला देती है।

तो मैं तुझे निराश नहीं करूँगी।···तू जानती है मैं तुझे कितना चाहती हूँ! मैं यह कैसे चाहूँगी कि तेरी भावना··· पर अलका, मुझे अब भी विश्वास नहीं होता कि उसने जो कुछ किया है, उन्माद में किया है। सोचती हूँ कि इसके लिए उसे···पर संभव है मैं ठीक नहीं सोच रही···।

चबूतरे से उठ पड़ती है।

अच्छा, तू जाकर शशांक से कह कि वह उद्यान में सबके आसन लगाने से पहले एक बार मुझसे बात कर ले। अतिथि अब आया ही चाहते हैं।···श्वेतांग लौट आए, तो मैं श्यामांग के लिए दूसरा आदेश भेजती हूँ।

अलका का कंधा थपथपा देती है। अलका साभार झुककर दाईं ओर के द्वार से चली जाती है। तभी सामने के द्वार से नंद अंदर आता है। चेहरे से लगता है जैसे वह कोई दुर्घटना देखकर आया हो और उसका आतंक अभी उसके मन से निकला न हो। वह आकर पल-भर झूले के पास रुकता है। सुंदरी अलका के जाने के बाद अपने से बात करती रहती है।

परंतु सोचती हूँ कि यह उन्माद आज ही क्यों ? आज से पहले कभी ऐसा क्यों नहीं हुआ ? कितने दिन से वह यहाँ काम कर रहा है, फिर क्यों आज ही···?

नंद मदिराकोष्ठ के पास आकर चषक में मदिरा डालता है। तभी सुंदरी की दृष्टि उस पर पड़ती है।

(चौंककर) आप ?··· आप कब आए ? अभी-अभी तो मैं···।

नंद : *(चषक होंठों के पास ले जाकर)*
मैं अभी आया हूँ।

चषक खाली करके यथास्थान रख देता है।

सुंदरी :
और मैं कितनी देर से प्रतीक्षा कर रही थी। सोच रही थी कि शायद···।

नंद : *(पास आता हुआ)*
क्या सोच रही थीं···कि नहीं आऊँगा?

सुंदरी :
ऐसी असंभव बात मैं सोच सकती थी? सोच रही थी कि शायद आखेट में बहुत दूर निकल गए हैं। डर रही थी कि सब लोग आ चुकेंगे, तो अंत में आनेवाले अतिथि आप ही न हों।

नंद : *(जैसे कुछ और बात सोचता हुआ)*
अंत में आनेवाला अतिथि···!

चबूतरे पर जाकर विश्राम की मुद्रा में बैठ जाता है।

मैं जानता था तुम प्रतीक्षा में होगी। इसीलिए··· *(सहसा बात बदलकर)* आखेट में बहुत देर तो नहीं लगी।···तुम्हें लगा कि बहुत देर लगी है?

सुंदरी :
नहीं लगी? आप संध्या से पहले लौट आने को नहीं कह गए थे?

पास जाकर पल-भर उसे देखती रहती है।

इतने थके हुए क्यों लग रहे हैं?

नंद :
इसलिए कि थककर आया हूँ।···दिन-भर एक मृग का पीछा किया, फिर भी वह हाथ नहीं आया। जाने कैसा मायामृग था वह!

सुंदरी :

यह तो कभी नहीं हुआ कि आपका आखेट आपके हाथ से निकल जाए।

नंद :

हाथ से निकला भी तो नहीं।···सच, थकान उतनी शरीर की नहीं जितनी मन की है। मृग मेरे बाण से आहत नहीं हुआ, इससे मन को उतना खेद नहीं हुआ, जितना इससे···कि जब थककर लौटने का निश्चय किया, तो वही मृग···थोड़ी ही दूर आगे···रास्ते में मरा हुआ दिखाई दे गया।

सुंदरी :

किसी और के बाण से आहत हुआ वह ?

नंद :

नहीं। किसी के बाण से आहत नहीं हुआ, अपनी थकान से मर गया। बाण से क्षत-विक्षत मृग को देखकर मन में कभी कोई अनुभूति नहीं होती, होती भी है, तो केवल प्राप्ति की हल्की-सी अनुभूति। परंतु बिना घाव के अपनी ही क्लांति से मरे हुए मृग को देखकर मन में जाने कैसा लगा ! और लौटकर आते हुए अपने-आप इतना थका और टूटा हुआ लगने लगा कि···।

सुंदरी :

थोड़ी मदिरा ले लीजिए। मन स्वस्थ हो जाएगा।

मदिराकोष्ठ की ओर जाने लगती है।

नंद :

अभी और नहीं। कुछ देर बाद। *(सहसा उठकर)* मैंने कभी सोचा तक नहीं था कि मरा हुआ मृग भी इतना सजीव लग सकता है। ऐसे लग रहा था जैसे हाथ लगाते ही वह आशंका से काँप जाएगा और सहसा उठकर भाग खड़ा

होगा। पर मैं उसे हाथ भी तो नहीं लगा सका। आखेटकों ने उसे उठा लाना चाहा, तो मैंने मना कर दिया। कहा कि उसे वहीं पड़ा रहने दो, उसी रूप में मृत और···जीवित!

सुंदरी :

अतिथियों के आने तक शयनकक्ष में विश्राम करना चाहेंगे?

नंद : *(जैसे कुछ चौंककर)*

अतिथियों के आने तक?···नहीं।···तुमने पहले ही कह दिया था कि आज विश्राम नहीं होगा।

सुंदरी :

मैंने कहा तो था, पर तब यह कहाँ सोचा था कि···

नंद :

तुम्हारी कही हुई बात तुम्हारे लिए उतना महत्त्व नहीं रखती जितना मेरे लिए। *(उसके कंधों पर थोड़ा झुककर)* यह तुम नहीं जानतीं।

सुंदरी :

मैं नहीं जानती?

नंद :

जानतीं, तो ऐसा कहतीं?

बाईं ओर के द्वार से शशांक आता है। उन्हें देखकर पल-भर के लिए द्वार के पास ठिठकता है।

शशांक :

देवी का आदेश था कि मैं···।

सुंदरी :

हाँ, मैंने तुम्हें बुला भेजा था। बताना चाहती थी कि उद्यान में अतिथियों के बैठने की व्यवस्था कैसे करनी है। आसन इस तरह बिछाने होंगे कि चार-चार छः-छः लोग एक-एक वृक्ष के नीचे बैठ सकें। सारा जमघट एक ही

स्थान पर हो, यह मैं नहीं चाहूँगी···।

नंद : *(सुंदरी से)*

सुनो···।

सुंदरी :

···और जितने मदिरापात्र हैं···आज के लिए कुछ विशेष मदिराएँ प्रस्तुत की हैं ?

शशांक :

हाँ, देवि ! कुछ ऐसे सम्मिश्रण हैं जिनका राजभवन में आज पहली बार सेवन किया जाएगा।

नंद : *(सुंदरी के निकट आकर)*

मैं एक बात कहना चाहता था सुंदरी···।

सुंदरी :

···तो मदिरापात्र और चषक कमलताल के पास के चबूतरे पर रखवा देना, और वहाँ भी आसपास कुछ आसन बिछवा देना। जब सारी व्यवस्था हो जाए, तो आकर मुझे सूचित कर देना।

शशांक आज्ञा-ग्रहण के रूप में सिर हिलाकर बाईं ओर के द्वार से चला जाता है। सुंदरी मुड़कर नंद की ओर देखती है।

सुंदरी :

आप कुछ कह रहे थे ?

नंद अनिश्चित-सा उसकी ओर देखता है।

नंद :

हाँ···नहीं···ऐसी कुछ विशेष बात नहीं थी। मैं यही कहना चाहता था कि···व्यवस्था यदि उद्यान के स्थान पर कक्ष में की जाए, तो···।

सुंदरी : इस कक्ष में ? इस कक्ष में इतना स्थान है कि सब अतिथि यहाँ आ सकें ?

नंद :

इतना स्थान तो नहीं है, फिर भी···।

मुड़कर मदिराकोष्ठ की ओर जाता है।

सुंदरी :

मदिरा लेंगे? अभी मैंने कहा था तो···।

नंद : ***(जैसे चौंककर)***

हाँ···नहीं···मैं इस विचार से इधर नहीं आया।

फिर से मुड़कर सुंदरी की ओर आ जाता है।

सुंदरी :

आप व्यवस्था के संबंध में कुछ कह रहे थे।

नंद आकर आगे के दीपाधार के पास खड़ा हो जाता है।

नंद :

हाँ, मैं कह रहा था कि संभव है उतने लोग न भी आएँ, जितने लोगों के आने की हम आशा कर रहे हैं।

सुंदरी : ***(थोड़ा तमककर)***

क्यों? आज तक कभी हुआ है कि कपिलवास्तु के किसी राजपुरुष ने इस भवन से निमंत्रण पाकर अपने को कृतार्थ न समझा हो? कोई एक भी व्यक्ति कभी समय पर आने से रहा हो? अस्वस्थता के कारण या नगर से बाहर रहने के कारण कोई न आ पाए, तो बात दूसरी है।

नंद :

मैं यही तो कह रहा था कि···संभव है···कुछ लोगों के लिए ऐसे कुछ कारण हो जाएँ।···सोमदत्त और विशाखदेव के यहाँ मैं अभी स्वयं होकर आया था···।

सुंदरी : ***(आवेश में उसके पास आकर)***

आप स्वयं···उन लोगों के यहाँ होकर आए हैं? क्यों? आपका स्वयं लोगों के यहाँ जाना···विशेष रूप से यह ▸ कहने के लिए···यह क्या अपमान का विषय नहीं है?

नंद : मैं विशेष रूप से नहीं गया···।

दीपाधार और शृंगारकोष्ठ के बीच टहलता है।

गया था देवी यशोधरा से मिलने···।

सुंदरी : *(और तमककर)*

देवी यशोधरा से मिलने ?

नंद :

उन्होंने बुला भेजा था।

सुंदरी :

बुला भेजा था ? क्यों ?

नंद : *(टहलते हुए रुककर)*

उन्होंने कहलाया था कि कल से वे इस भवन में नहीं रहेंगी··· बाहर भिक्षुणियों के शिविर में चली जाएँगी, इसलिए···।

सुंदरी :

इसलिए क्या ?

नंद फिर टहलने लगता है।

नंद :

इसलिए चाहती हैं कि आज अंतिम बार भवन में अपने सब बांधवों से मिल लें।

सुंदरी मन में उमड़ते हुए भाव को किसी तरह दबाकर झूले पर जा बैठती है।

सुंदरी :

तो उनके मन का मोह अभी छूटा नहीं है ?

नंद :

मोह की बात··· *(बात बीच में ही रोककर)* ···हो सकता है ऐसा ही हो।···उन्होंने कहलाया तुम्हारे लिए भी था।

सुंदरी :

और आपने जाकर मेरी ओर से क्षमा माँग ली।

नंद :

नहीं। मैंने कहा कि तुमने आज कुछ अतिथियों को निमंत्रित कर रखा है, इसलिए···।

सुंदरी : *(झूले से उठकर)*

अतिथियों को निमंत्रित कर रखा है, इतना ही ?

आकर चबूतरे के सहारे खड़ी हो जाती है।

कामोत्सव की बात नहीं कह सके ?

नंद :

कहने की आवश्यकता नहीं थी।

घूमता हुआ शृंगारकोष्ठ की ओर से होकर सुंदरी के पास आ जाता है।

वे यह बात जानती थीं। उन्होंने स्वयं ही कहा कि···।

सुंदरी :

वे जानती थीं न ? मुझे पता था वे अवश्य जानती हैं···। क्या कहा उन्होंने ?

नंद :

कहा कि अपनी व्यस्तता के कारण तुम न भी आ सको, तो मैं तुम्हें उनका आशीर्वाद···।

सुंदरी चबूतरे का सहारा छोड़कर सीधी खड़ी हो जाती है।

सुंदरी : *(कुछ तीव्र स्वर में)*

आत्म-वंचना की भी एक सीमा होती है। आज के दिन वे आशीर्वाद देंगी और मुझे ! मन में क्या सोच रही होंगी, मैं अच्छी तरह जानती हूँ। उन्हीं के कारण···।

श्वेतांग बाईं ओर के द्वार से आता है।

श्वेतांग : *(साभिवादन)*

देवी के आदेश का पालन हो गया है। श्यामांग को···।

सुंदरी : *(उसी तीव्रता के साथ)*

श्यामांग का अपराध मैंने क्षमा कर दिया है। अलका को

विश्वास है कि उसने जो कुछ भी किया उन्माद में किया है। मैंने अलका को वचन दिया था कि मैं उसका अपराध क्षमा कर दूँगी। इसलिए उसके संबंध में मेरा दूसरा आदेश यह है कि उसका उपचार करने की व्यवस्था की जाए। जब तक वह ठीक नहीं होता तब तक वह अलका की ही देख-रेख में रहेगा।

श्वेतांग भौचक्का-सा उसकी ओर देखता है जैसे उसे सुनी हुई बात पर विश्वास न हो रहा हो।

श्वेतांग :

तो क्या···क्या अभी जाकर···?

सुंदरी :

हाँ, अभी जाकर उसे ले आने की व्यवस्था करो।···और सुनो। यहाँ अभ्यंतर भाग में जो कर्मचारियों के कक्ष हैं, उन्हीं में से एक में उसे रखना होगा। अलका को उसकी देखभाल करने में यहाँ सुविधा रहेगी।

श्वेतांग : *(कुछ संकोच के साथ)*

मैं कहना चाहता था देवि, कि यदि आज की रात···!

सुंदरी : *(अधीर होकर)*

मैंने जो आदेश दिया है, उसका पालन करो। जाओ।

श्वेतांग बाईं ओर के द्वार से चला जाता है। नंद इस बीच पीछे के दीपाधार के पास जाकर कुछ-एक बुझे हुए दीपकों को दूसरे दीपकों की लौ से जलाता है। फिर सुंदरी की ओर लौट आता है।

नंद :

श्यामांग को क्या हुआ है?

सुंदरी :

मुझे आप स्मरण न दिलाएँ, मैं अब उस बात को भूल जाना चाहती हूँ।

नंद :

परंतु उसके उन्माद की बात···?

सुंदरी :

बात कुछ नहीं है। काम कर रहा था। अचानक बहकी-बहकी बातें करने लगा। फिर एक अपराध उससे हो गया। परंतु मैंने उसे क्षमा कर दिया है।

नंद पल-भर मौन रहता है।

नंद :

तुम बुरा तो नहीं मान गईं?

सुंदरी :

किस बात का?

नंद :

मेरे अकारण बाहर रुके रहने का···देर से लौटकर आने का?

सुंदरी :

नहीं तो। आप समय से पहले तो आ ही गए हैं।

नंद :

फिर ऐसी क्यों हो रही हो?

सुंदरी :

कैसी हो रही हूँ?

नंद :

यह तो मैं ही देख सकता हूँ···जो तुम्हारे चेहरे का दर्पण हूँ।

सुंदरी :

रहने दीजिए, मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता।

नंद :

अच्छा नहीं लगता! मगर यह बात मेरी नहीं, तुम्हारी कही हुई है। तुम्हें याद नहीं?

सुंदरी :

आज मुझे कुछ भी याद नहीं।

नंद :

यह भी याद नहीं कि तुमने आज कामोत्सव का आयोजन किया है···तुम्हारे कुछ अतिथि···अभी आनेवाले हैं।

सुंदरी :

कुछ अतिथि!···आप बार-बार यह क्यों कहना चाहते हैं कि सब अतिथि नहीं आएँगे?···सोमदत्त और विशाखदेव इससे लज्जित नहीं हुए कि आप कहने के लिए स्वयं उनके यहाँ गए?

नंद बाँहें पीछे करके फिर टहलने लगता है।

नंद :

वे लज्जित थे···विशेष रूप से इसलिए कि वे···वे उत्सव में···नहीं आ पाएँगे···!

सुंदरी :

नहीं आ पाएँगे?

पल-भर के लिए स्तब्ध हो रहती है।

कारण?

नंद :

(रुककर)

उन्होंने क्षमा चाहते हुए दिन में ही संदेश भेजा था। मैंने उस समय तुम्हें बताना ठीक नहीं समझा। सोचा कि उसकी आवश्यकता नहीं होगी। मैं उधर जाऊँगा, तो वे अवश्य मेरे साथ चले आएँगे···।

सुंदरी :

पर आपने बताया क्यों नहीं मुझे? बताया होता, तो मैं आपको कभी किसी के यहाँ न जाने देती। मेरे उत्सव में लोग अनुरोध करने से आएँ, इससे उनका न आना ही अच्छा है।···और दो व्यक्तियों के आने-न-आने से अंतर भी क्या पड़ता है? **(कुछ सोचती-सी)** देखिए, और

अतिथियों के सामने यह बात न कहिएगा कि आप इन लोगों को बुलाने इनके यहाँ गए थे।

बाहर से किसी के आने की आहट सुनाई देती है। सुंदरी घूमकर सामने के द्वार की ओर जाती है।

शायद कुछ लोग आ रहे हैं।

सामने के द्वार से मैत्रेय आता है।

(प्रयत्न से स्वर में उत्साह लाकर) आर्य मैत्रेय! हमारे पहले अतिथि!

मैत्रेय :

(गंभीर भाव से आगे आता हुआ)

हाँ, पहला···और, शायद एकमात्र अतिथि!

बढ़कर नंद के पास आ जाता है। सुंदरी आहत दृष्टि से उसकी ओर देखती हुई अपने स्थान पर खड़ी रहती है।

नंद :

एकमात्र अतिथि! तो क्या और लोगों में से···?

मैत्रेय :

जिन-जिनसे मैं मिला हूँ, उनमें से हरएक ने किसी-न-किसी कारण अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए, क्षमा-याचना की है—रविदत्त, अग्निवर्मा, नीलवर्मा, ईषाण, शैवाल, सभी ने।

नंद :

(अव्यवस्थित-सा)

और पद्मकांत, रुद्रदेव, लोहिताक्ष, शालिमित्र···?

मैत्रेय :

लोहिताक्ष और शालिमित्र से मिलने नहीं गया पद्मकांत और रुद्रदेव ने भी यही कहा कि उनकी ओर से मैं क्षमायाचना करूँ, वे आज नहीं आ पाएँगे। उनसे मिलने के बाद और किसी के यहाँ जाने को मन नहीं हुआ।

सुंदरी, अपने को रोक पाने में असमर्थ, बढ़कर उनके बीच में आ जाती है।

सुंदरी :

परंतु इन सबसे कहने जाने की आवश्यकता आपको क्यों हुई ? क्या आप पहले से जानते थे कि वे लोग नहीं आएँगे ?

मैत्रेय :

इसका उत्तर कुमार दे सकते हैं।

मदिराकोष्ठ के पास जाकर चषक में मदिरा डालने लगता है।

सुंदरी : ***(आवेशपूर्ण स्वर में नंद से)***

तो क्या इन सबने आपको संदेश भेजा था कि ये नहीं आएँगे ?

सीधे नंद की आँखों मे देखती है। नंद आँखें दूसरी ओर हटा लेता है।

नंद :

सबने तो नहीं···पर इनमें से कई लोगों ने संदेश भेजा था।

सुंदरी :

और आपने इसकी चर्चा तक मुझसे करना आवश्यक नहीं समझा

नंद :

मैं तुम्हारे उत्साह में बाधा डालना नहीं चाहता था। सोचा था कि इनमें से अधिकांश लोग एक बार जाकर कहने से···

सुंदरी :

कितना मान होता मेरा कि जाकर कहने से जो लोग आते, उनका मुझे इस घर में स्वागत करना पड़ता ! आपने यह नहीं सोचा कि मैं··· कि मैं···।

आवेग पर वश न रख सकने के कारण मुँह हाथों में

छिपाए चबूतरे पर जा बैठती है। नंद और मैत्रेय एक-दूसरे की ओर देखते हैं। तभी बाहर कुछ आहट सुनाई देती है। मैत्रेय भरा हुआ चषक मदिराकोष्ठ में रखकर सामने द्वार की ओर बढ़ता है। परंतु नंद अपनी उत्सुकता में उससे पहले द्वार के पास पहुँच जाता है।

नंद :

शायद कुछ लोग आ रहे हैं।

द्वार से निकलकर गवाक्ष के पास चला जाता है। सुंदरी धीरे-धीरे चेहरे से हाथ हटाती है और अपने को सँभालने का प्रयत्न करती हुई उस ओर देखती है। नंद गवाक्ष के पास से हटकर वापस कक्ष में आ जाता है। सुंदरी चबूतरे से उठ खड़ी होती है।

सुंदरी :

कौन लोग हैं ?

नंद उसके पास आ खड़ा होता है। मुँह से कुछ नहीं कहता।

देखा है आपने कौन लोग हैं ?

नंद :

अतिथि नहीं हैं।

सुंदरी : ***(प्रयत्न से अपने को सुस्थित रखती हुई)***

तो और कौन लोग हैं ?

नंद :

अपने ही कुछ कर्मचारी हैं। श्वेतांग, बीजगुप्त और नागदास···।

सुंदरी : ***(अपने भाव को छिपाने के प्रयत्न में)***

ये सब लोग क्या अपने-अपने कार्य पर नहीं हैं ?

नंद :

कार्य पर ही हैं। श्वेतांग को अभी तुमने आदेश दिया था न ! ये सब मिलकर श्यामांग को साथ के कर्मचारियों के

कक्ष में ला रहे हैं।

मैत्रेय :

मैं दिन-भर सोचता रहा कि आपसे कहूँ, परंतु कह नहीं पाया। कामोत्सव का आयोजन यदि आज स्थगित करके कल रखा जा सकता···।

भरा हुआ चषक फिर उठा लेता है। सुंदरी उसकी बात से अपने पर वश खो बैठती है।

सुंदरी : ***(मदिराकोष्ठ की ओर जाती हुई)***

कामोत्सव कामना का उत्सव है, आर्य मैत्रेय! मैं अपनी आज की कामना कल के लिए टाल रखूँ···क्यों? मेरी कामना मेरे अंतर की है। मेरे अंतर में ही उसकी पूर्ति भी हो सकती है। बाहर का आयोजन उसके लिए उतना महत्त्व नहीं रखता जितना कुछ लोग समझ रहे हैं।

नंद बढ़कर सुंदरी के पास आ जाता है।

नंद :

देखो, इस तरह अव्यवस्थित नहीं होते।

उसका हाथ अपने हाथ में लेना चाहता है, परंतु सुंदरी हाथ छुड़ा लेती है।

सुंदरी :

मैं अव्यवस्थित नहीं हूँ। किसी का कोई षड्यंत्र मुझे अव्यवस्थित नहीं कर सकता।

नंद :

षड्यंत्र? इसमें षड्यंत्र कोई नहीं है सुंदरी···!

सुंदरी :

यह षड्यंत्र नहीं तो और क्या है? और इस षड्यंत्र की प्रेरणा कहाँ से आई है, यह भी मैं अच्छी तरह जानती हूँ।

सहसा वहाँ से हटकर शृंगारकोष्ठ के पास आ जाती है और वहाँ की सामग्री को इधर-उधर रखने-हटाने लगती

है। मैत्रेय पल-भर स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखता रहता है। फिर भरा हुआ चषक पुनः मदिराकोष्ठ में रख देता है।

मैत्रेय :

मैं आज्ञा चाहूँगा कुमार ! यहाँ और रुककर मैं राजकुमारी के उद्वेग का कारण नहीं बनना चाहता।

नंद :

ठहरो मैत्रेय ! तुम्हें सोचना चाहिए कि सुंदरी के उद्वेग का वास्तविक कारण···।

सुंदरी : ***(आपे से बाहर होकर)***

अपने उद्वेग का वास्तविक कारण मैं स्वयं हूँ। और किसी को यह अधिकार मैं नहीं देती कि वह मेरे उद्वेग का कारण बन सके। आर्य मैत्रेय यदि जाना चाहते हैं, तो इन्हें भी जाने दीजिए। कह दीजिए कि जिनके यहाँ ये होकर आए हैं, जाते हुए भी एक बार उनके यहाँ होते जाएँ। उन सबसे कह दें कि मेरे यहाँ आने के लिए किसी कल की प्रतीक्षा में वे न रहें। वह कल अब उनके लिए कभी नहीं आएगा, कभी नहीं···।

सामग्री को इधर-उधर रखते हुए चंदनलेप की कटोरी हाथ से गिर जाती है। उसे पैर से ठोकर लगाकर वह सहसा बाईं ओर के द्वार से चली जाती है।

नंद : ***(असहाय स्वर में)***

ठहरो सुंदरी, बात सुनो···।

सुंदरी कोई उत्तर नहीं देती। पल-भर मौन व्यवधान रहता है। फिर नंद मुड़कर मैत्रेय की ओर देखता है।

मैत्रेय :

मैं आज्ञा चाहूँगा कुमार !

उत्तरीय लपेटकर झट से सामने के द्वार से चला जाता है। नंद सिर झुकाए धीरे-धीरे पीछे के दीपाधार की ओर जाता है। जाते हुए मदिराकोष्ठ के पास रुककर भरे हुए

चषक को देखता है और उँडेल देता है। बाईं ओर के द्वार से शशांक आता है।

शशांक :

अतिथियों के बैठने की सारी व्यवस्था हो गई है, कुमार! देवी के आदेशानुसार उद्यान के एक-एक वृक्ष के नीचे···।

नंद : ***(बैठे हुए स्वर में)***

जाओ शशांक! अब उस सबकी आवश्यकता नहीं है।

शशांक :

पर कुमार···।

नंद :

तुमसे कह दिया है जाओ। जो आसन बिछाए हैं, उठा दो। अब उन सबकी कोई आवश्यकता नहीं है।

शशांक चकित-सा पल-भर रुका रहता है। फिर सिर झुकाकर चला जाता है। नंद दीपाधार का सहारा लिए अंतर्मुख-सा ऊपर की ओर देखने लगता है। प्रकाश उसके चेहरे और ऊपर की पुरुष-मूर्त्ति पर केंद्रित होकर धीरे-धीरे मंद पड़ता है।

अंक 2

अँधेरा। अँधेरे में टहलती हुई नंद की आकृति प्रकाश होने तक एक छाया-सी नज़र आती है।

नेपथ्य से श्यामांग का ज्वर-प्रलाप सुनाई देता है, धीमा परंतु स्पष्ट।

नेपथ्य :

कोई स्वर नहीं है···कोई किरण नहीं है···सबकुछ··· सबकुछ इस अंधकूप में डूब गया है।···मुझे सुलझा लेने दो···सुलझा लेने दो···नहीं तो अपने हाथों का मैं क्या करूँगा!···कोई उपाय नहीं है···कोई मार्ग नहीं है···इन लहरों पर से···लहरों पर से···यह छाया हटा दो···मुझसे··· मुझसे यह छाया नहीं ओढ़ी जाती···।

नंद बोलता है, तो नेपथ्य का स्वर अपेक्षया मंद पड़ जाता है। स्पष्टता नंद के स्वर में रहती है, परंतु दोनों स्वर एक-दूसरे को काटते चलते हैं।

नंद : ***(बड़े दीपाधार के पास से झूले की ओर आती हुई छायाकृति : स्वर दबा-दबा स्वगत)***

कितनी लंबी है यह रात, जैसे कि इसे बीतना ही न हो। बार-बार लगता है यह स्वर रात पर पहरा दे रहा है···यही इसे बीतने नहीं देता।

नेपथ्य :

स्वर नहीं है···कहीं कोई स्वर नहीं है···इस अंधकूप में सबकुछ खो गया है···मेरा स्वर···पानी की लहरों का स्वर···सबकुछ एक आवर्त में घूम रहा है···एक चील··· एक चील सबकुछ झपटकर लिए जा रही है···इसे रोको··· इसे रोको···।

नंद : ***(झूले के पास से आगे के दीपाधार की ओर आती हुई आकृति)***

आधी रात से अब तक यह स्वर नहीं रुका। किस आदेश से इसे रोकूँ? सोचता था कि यह रुके, तो कुछ देर सोने का प्रयत्न करूँ।···अच्छा हुआ कि सुंदरी तब तक थककर सो गई थी। वह जाग रही होती, तो जाने इस स्वर से उसे कैसा लगता!

नेपथ्य :

मुझमें साहस नहीं है···किसी में साहस नहीं है···यह चील मुझे लिए जा रही है···जाने कहाँ···नहीं चील नहीं है···एक छाया है···काले अँधेरे कूप में भटकती हुई छाया··· अकेली··· *(कराहकर)* मुझे इस कूप से निकालो···इस कूप में पानी नहीं है···इसका पानी कहाँ गया? इसका पानी कौन ले गया?···मुझे पानी दो, पानी···।

नेपथ्य में ही हल्का-सा अलका का स्वर: 'अभी देती हूँ पानी, अभी ला रही हूँ।' चबूतरे पर सुंदरी—दूसरी छायाकृति—करवट बदलती है।

नंद : ***(धीमे कदमों से चबूतरे की ओर जाती हुई छायाकृति: झुककर और सुंदरी को देखकर)***

नहीं, नींद नहीं खुली। दिन-भर की थकान और उसके बाद की गहरी निराशा!···कितनी कठिनता से नींद आई थी इसे! अलका को सोचना चाहिए था···कि इस स्वर से किसी की नींद टूट भी सकती है।

नेपथ्य : *(पहले से कुछ ऊँचा स्वर)*

कोई नहीं देखेगा···मुझे यहाँ कोई नहीं देखेगा···इस अँधेरे में···इस अँधेरे में मुझे अकेला क्यों छोड़ दिया ?···मैं इस अँधेरे में नहीं रहना चाहता···मैं अकेला नहीं रहना चाहता···मुझे एक किरण ला दो···एक किरण···*(कुछ और ऊँचे स्वर में)* कोई नहीं लाएगा··· ?···कोई एक भी किरण नहीं लाएगा ?

सुंदरी फिर करवट बदलती है। उसके मुँह से एकाध शब्द निकल पड़ता है: 'नहीं, अब और नहीं, बस।' सामने के गवाक्ष से प्रत्यूष की हल्की किरण अंदर आती है।

नेपथ्य :

लहरों में पानी नहीं···कहीं भी पानी नहीं है···।

नेपथ्य में अलका का स्वर: 'मैं पानी ले आई हूँ। थोड़ा-सा पानी पी लो।'

नेपथ्य : *(हाँफता-सा स्वर)*

पानी नहीं है···पानी कहाँ है ?···कहाँ है पानी···?

नंद दबे पैरों दाईं ओर के द्वार के पास जाता है।

नंद : *(पहले से स्पष्ट आकृति)*

अलका !

नेपथ्य : *(पहले से शांत स्वर)*

यह पानी···हाँ है···बस नहीं···प्यास नहीं···और प्यास नहीं···।

स्वर शांत हो जाता है।

नंद :

अलका !

अलका दाईं ओर के द्वार से आती है। वस्त्र और भाव अस्तव्यस्त।

अलका :

कुमार !

नंद :

कक्ष में अँधेरा है। दीपक जलाने के लिए अग्निकाष्ठ ला दो।

अलका वापस चली जाती है। नंद चबूतरे के पास जाकर सुंदरी के बालों को सहला देता है। अलका अग्निकाष्ठ लेकर आती है। नंद पास आकर अग्निकाष्ठ के लिए हाथ बढ़ा देता है।

नंद :

लाओ, मुझे दो।

अलका :

मैं जला देती हूँ।

नंद :

नहीं, मुझे दे दो।

अग्निकाष्ठ उसके हाथ से ले लेता है।

लगता है श्यामांग रात-भर अर्द्धमूर्च्छित रहा है।

अलका : ***(आँखें झुकाए हुए)***

हाँ कुमार !···इसका अर्थ है कि आप भी रात-भर···।

नंद :

मुझे नींद नहीं आई।··· जाओ, उसे देखभाल की आवश्यकता होगी।

अलका :

प्रलाप रुक गया है। लगता है नींद आ गई है। देवी सुंदरी···।

नंद :

उसे नींद आ गई थी। जाओ, श्यामांग को फिर भी तुम्हारी आवश्यकता पड़ सकती है।

अलका चली जाती है। नंद पीछे के दीपाधार के कुछ एक दीपक जला देता है। फिर अग्निकाष्ठ बुझाकर दीपाधार के नीचे रख देता है।

उजाला हो जाने से कक्ष की धुँधली रेखाएँ स्पष्ट हो जाती हैं। चबूतरे पर बिछावन अस्तव्यस्त है, तकिए अपने स्थानों से हटकर इधर-उधर पड़े हैं। चबूतरे पर और आसपास कुछ फूल और पुष्पमालाएँ बिखरी हैं। मत्स्याकार आसन पर एक तकिया तिरछा पड़ा है। मदिराकोष्ठ पर मदिरापात्र औंधा पड़ा है जिससे एक-एक बूँद मदिरा अब भी टपक रही है। दो-एक चषक शृंगारकोष्ठ और चबूतरे पर पड़े हैं। साधारणतया कक्ष का रूप आवेशजनित अस्तव्यस्तता की गवाही देता है। सुंदरी आँखें खोलती है और हल्की-सी अँगड़ाई लेकर तकिए से सिर उठाती है।

सुंदरी :

अभी प्रभात नहीं हुआ ?

नंद :

अभी नहीं। तुम उठ क्यों गईं ? कुछ देर और सो रहो।

सुंदरी एक तकिए से टेक लगाकर दो-एक तकिए गोद में रख लेती है।

सुंदरी :

ये दीपक रात-भर जलते रहे ? बुझे नहीं ?

नंद :

बुझ गए थे। मैंने अभी फिर जलाए हैं।

सुंदरी :

आपने जलाए हैं ? क्यों ? दास-दासियाँ···।

नंद :

मैं नहीं चाहता था कि दास-दासियों में से कोई आकर तुम्हारी नींद में बाधा डाले।

सुंदरी :

आप सोए नहीं ?

नंद :

सोने की चेष्टा की थी पर नींद नहीं आई।

आकर उसके पास बैठ जाता है।

सुंदरी :

क्यों ?

मेरे प्रति मन में बहुत क्रोध था ?

नंद :

तुम्हारे प्रति क्रोध ? मेरे मन में ? ऐसा तुम सोच सकती हो ?

सुंदरी : *(आँखें मूँदे हुए)*

कभी-कभी चाहती हूँ कि सोच सकूँ।

आँखें खोल लेती है और सीधी बैठ जाती है।

सच, आप कभी मुझ पर क्रोध क्यों नहीं करते ? इतनी बार, इतनी तरह के कारण होते हैं, फिर भी···?

नंद खाली चषक को उठाकर देखता है और चबूतरे से उठ पड़ता है।

नंद :

सोचता हूँ यह सब सहेज देना ठीक होगा। दास-दासियाँ आकर सबकुछ इस तरह पड़ा हुआ देखेंगी, तो···।

सुंदरी भी चबूतरे से उठ पड़ती है।

सुंदरी :

तो क्या होगा ? हमारे अंतरंग जीवन को लेकर उन्हें कुछ भी सोचने का अधिकार नहीं है।

नंद शृंगारकोष्ठ से भी चषक उठा लेता है और दोनों को ले जाकर मदिराकोष्ठ में रख देता है। औंधे मदिरापात्र से टपकती हुई बूँदों को पल-भर देखता रहता है, फिर उसे

सीधा कर देता है। सुंदरी कुछ-एक बिखरी हुई मालाओं को उठाकर चबूतरे पर रखती है।

नंद :

कहने का अधिकार न हो, पर सोचने का अधिकार तो किसी को भी रहता ही है।

सुंदरी :

यह मदिरापात्र औंधा कैसे हो गया?

नंद :

न जाने कैसे। हो सकता है पुष्पमालाओं की एकाध चोट यह भी खा गया हो।

मत्स्याकार आसन से तकिया उठाकर चबूतरे की ओर ले आता है।

सुंदरी : ***(उसके पास जाकर)***

मुझे सचमुच बहुत खेद है।

नंद सलवटें निकालकर तकिया चबूतरे पर रख देता है।

नंद :

किस बात के लिए?

सुंदरी :

रात के अपने व्यवहार के लिए।

नंद :

तुम व्यर्थ ही मन में खेद ला रही हो। तुम उस समय विक्षुब्ध थीं। मैं तुम्हारी मनःस्थिति में होता, तो शायद मैं भी ऐसे ही करता।

सुंदरी :

आप ऐसे कभी न करते। मैं आपको जानती नहीं हूँ?

नंद :

जानती हो, तो यह सब किसलिए कह रही हो?

सुंदरी :

ऐसे ही। कहना अच्छा लगता है। कभी-कभी सोचती हूँ कि···।

नंद :

क्या सोचती हो?

सुंदरी :

कि आप कभी सचमुच मुझसे रुष्ट हो जाएँ, दो-एक रातें मेरे कक्ष में न आएँ, तो कैसे लगेगा?

नंद :

अच्छा लगेगा?

सुंदरी :

अच्छा नहीं लगेगा। फिर भी कभी-कभी चाहती हूँ कि···।

नेपथ्य में प्रभात की शंखध्वनि सुनाई देती है।

प्रभात की शंखध्वनि! आपने सारी रात बिना सोए ही काट दी?

नंद :

उससे क्या होता है? सोने के लिए इसके बाद और रातें क्या नहीं आएँगी?

सुंदरी शृंगारकोष्ठ के पास जाकर पल-भर दर्पण के सामने खड़ी रहती है।

सुंदरी :

सोकर उठने पर अपना चेहरा कैसा लगता है?

नंद :

कैसा लगता है?

सुंदरी :

लगता है जैसे इसमें कांति हो ही नहीं। आपको नहीं लगता?

नंद :

न, मुझे नहीं लगता।

सुंदरी :

ये सब कहने की बातें हैं। आप थोड़ी देर के लिए बाहर चले जाइए। मैं अलका को बुलाकर अपना प्रसाधन कर लूँ।

पास आकर उसे सामने के द्वार की ओर भेज देना चाहती है।

जाइए आप।

जाइए न!

नंद अपने अंदर की अनुभूति से संतुष्ट पल-भर आँख मूँदे रहता है। फिर सामने के द्वार से बाहर गवाक्ष के पास चला जाता है और दोनों बाँहें गवाक्ष पर फैलाकर प्रत्यूष के हलके उजाले को देखने लगता है। सुंदरी दर्पण के पास जाकर एक-एक करके अपनी पलकों को देखती है।

अलका!

दाईं ओर के द्वार से नीहारिका आती है।

नीहारिका :

देवि!

सुंदरी :

नीहारिका!··· अलका कहाँ है?

नीहारिका :

वह अभी-अभी बाहर गई है। जाते हुए मुझसे कह गई थी कि आपका कोई आदेश हो, तो मैं···।

सुंदरी :

परंतु वह गई कहाँ है?

नीहारिका :

कह रही थी कि कविराज के कक्ष में उनसे कुछ पूछने जा

रही है। श्यामांग रात-भर···।

सुंदरी : *(कुछ व्यंग्यपूर्ण स्वर में)*
ओह, श्यामांग ! मैं भूल गई थी कि मैंने परिचर्या के लिए उसे पास के कक्ष में बुला लिया है। ···मुझे शृंगार-प्रसाधन के लिए अलका की सहायता की आवश्यकता थी। तुझसे वह काम नहीं होगा, तू जा।

नीहारिका :
आप आदेश दें, तो मैं जाकर···।

सुंदरी :
नहीं। अलका को उसका उपचार करने दे, मैं अपना प्रसाधन स्वयं कर लूँगी।

नीहारिका सिर झुकाकर दाईं ओर के द्वार से चली जाती है। सुंदरी अपने चेहरे को घुमा-फिराकर दर्पण में देखती है, फिर प्रसाधन-सामग्री को सहेजती हुई एक बार नंद की ओर देख लेती है और मुस्करा कर वाल्मीकि की पंक्ति गुनगुनाने लगती है :

"स राजपुत्रः प्रियया विहीनः
शोकेन मोहेन च पीडयमानः··· ।"

(फिर नंद की ओर देखकर) सुनिए !

नंद गवाक्ष के पास से हटकर उसकी ओर आता है।

सुंदरी : ***(ध्यान से उसके चेहरे को देखती हुई)***
लगता है बाहर जाकर किसी का कुछ खो गया है···।

नंद :
मैं दूर जंगल के घने वृक्षों को देख रहा था।

सुंदरी :
क्यों ? प्रभात होते ही फिर आखेट का उत्साह जाग आया ?

नंद :
नहीं, उस मृग की बात सोच रहा था। सोच रहा था कि

वहीं घने वृक्षों की ओट में पड़ा हुआ वह···।

सुंदरी :

यहाँ आइए।

नंद : ***(पास आता हुआ)***

वहाँ पड़ा हुआ वह कल कैसा लग रहा था! और न जाने क्यों इस समय प्रभात का फीका चाँद भी मुझे कुछ वैसा ही लगा···कोमल, अक्षत और निर्जीव!

सुंदरी : ***(अपने में व्यस्त)***

देखिए, अलका नहीं है, मुझे स्वयं अपना प्रसाधन करना होगा।

नंद :

लगा जैसे घने वृक्षों में सदा से वह इसी तरह अटका हो, इस आशा में कि कभी कोई उसे वहाँ पड़ा देख लेगा और बाँहों में उठाकर ले जाएगा···।

सुंदरी :

आपने सुना है मैंने क्या कहा है?

नंद : ***(अपने को सहेजकर)***

क्या कहा है?

सुंदरी :

कि अलका नहीं है, मुझे अपना प्रसाधन स्वयं करना होगा। इसलिए आप यहाँ मेरे पास ठहरिए।

नंद :

परंतु अभी तुम्हीं ने कहा था कि···।

सुंदरी :

वह तब कहा था। अब कह रही हूँ कि यहाँ मेरे पास ठहरिए।

दर्पण में देखती हुई अपने बाल खोलने लगती है।

नंद :

और यदि थोड़ी देर में फिर कह दोगी कि···।

सुंदरी होंठों पर उँगली रखकर उसे चुप रहने के लिए कहती है।

सुंदरी :

बाधा न डालिए।

नंद मुस्कराकर आज्ञा-पालन की मुद्रा में सामने चबूतरे पर बैठ जाता है। सुंदरी बाल खोलकर धीरे-धीरे उनमें तेल लगाती है।

एक बात कहूँ?

नंद :

कहो।

सुंदरी :

आपको माननी होगी।

नंद :

तुम्हारी बात मैंने कब नहीं मानी?

सुंदरी :

आपको वचन देना होगा, कि कल रात जो कुछ हुआ, उसे आप बिल्कुल भूल जाएँगे।

नंद :

मुझे तो नहीं लगता कि कल रात ऐसा कुछ हुआ भी है।

सुंदरी :

आप उस विषय में सोचेंगे भी नहीं।

नंद :

यह तुम अपने से कहो जो अब भी उस विषय में सोच रही हो।

सुंदरी :

और कभी मुझे उसकी याद भी नहीं दिलाएँगे।

नंद :

मुझे याद रहेगी तो याद दिलाऊँगा।

सुंदरी :

और आज दिन-भर प्रसन्न रहेंगे।

नंद : *(रुकते-से स्वर में)*

हाँ, प्रसन्न क्यों नहीं रहूँगा?

सुंदरी : *(मुस्कराकर)*

प्रातः उठते ही मृग की बात सोचेंगे, तो कैसे प्रसन्न रहेंगे?

नंद उठकर उसके पास आता है।

नंद :

एक बात का मैं कभी निश्चय नहीं कर पाता।

सुंदरी हाथ रोककर उसकी ओर देखती है।

सुंदरी : किस बात का?

नंद :

कि मैं किस पर अधिक मुग्ध हूँ···तुम्हारी सुंदरता पर या तुम्हारी चातुरी पर।

सुंदरी कृत्रिम रोष के साथ उठ खड़ी होती है।

सुंदरी :

आप मुझे चतुर कहते हैं?

नंद :

नहीं हो तुम?

सुंदरी : *(जैसे बहुत भोलेपन से)*

नहीं तो।

ना-ना *(फिर जैसे व्यस्ततापूर्वक ढूँढ़ती हुई)*

चंदन-लेप कहाँ है?···अलका ने न जाने···।

नंद :

चंदन-लेप यहाँ है···।

झुककर नीचे से गिरी हुई कटोरी उठा लेता है और सुंदरी

की ओर बढ़ा देता है।

यह लो।

सुंदरी कटोरी लेकर निराशा के भाव से रख देती है।

सुंदरी :

यह तो खाली है। जो थोड़ा-बहुत लेप है, वह भी सूखा है।

नंद :

कल तुम्हीं ने तो···।

सुंदरी : ***(आँखों में रोष लाकर)***

फिर कल की बात याद करते हैं?

नंद :

अच्छा, अब नहीं करूँगा।

सुंदरी :

पर अब जो याद की···इसके लिए दंड भुगतना पड़ेगा।

नंद :

क्या दंड होगा?

सुंदरी : ***(जैसे सोचती हुई)***

दंड होगा···कि आपको···दर्पण लेकर···

आगे के दीपाधार की ओर संकेत करती है।

वहाँ खड़े होना होगा। यहाँ उजाला नहीं है, मैं अपने को ठीक से नहीं देख पा रही।

नंद :

बस इतना ही?

बढ़कर दर्पण हाथ में लेने लगता है। सुंदरी उसका हाथ रोक देती है।

सुंदरी :

नहीं, इतना ही नहीं। इसके अतिरिक्त आज दिन-भर कहीं जाना नहीं होगा, आखेट के लिए भी नहीं। यहाँ मेरे पास रहना होगा।

नंद :

सारा दिन ?

सुंदरी :

आपत्ति करेंगे, तो दंड और बढ़ जाएगा।

नंद :

मैंने आपत्ति कहाँ की है ?

सुंदरी :

तो लीजिए दर्पण।···नहीं, ठहरिए। *(चंदन की कटोरी उठाकर)* यह लेप सूख गया है। विशेषक कैसे बनाऊँगी ! इसे भिगो लाएँगे ?

नंद :

क्यों नहीं भिगो लाऊँगा ?

कटोरी उसके हाथ से ले लेता है।

आपत्ति करूँगा, तो···।

सुंदरी : ***(माथे पर बल डालकर)***

फिर वही बात···?

नंद :

अच्छा, यह भी नहीं कहूँगा।

दाईं ओर के द्वार से चला जाता है और पल-भर बाद कटोरी को तीली से हिलाता हुआ लौट आता है। सुंदरी इस बीच दर्पण को आधार से उठाकर उसमें अपनी छाया देखती है।

नंद : ***(पास आकर)***

यह लो।

सुंदरी : ***(कटोरी लेकर रखती हुई)***

पता है लोग क्या कहते हैं ?

नंद :

क्या कहते हैं ?

सुंदरी :

कहते हैं, आपका ब्याह एक यक्षिणी से हुआ है जो हर समय आपको अपने जादू से चलाती है।

नंद :

इसमें झूठ क्या है ?

सुंदरी :

झूठ नहीं है ?

नंद :

यक्षिणी हो या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता पर मानवी तुम नहीं हो। *(स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ)* ऐसा रूप मानवी का नहीं होता।

सुंदरी :

नहीं होता ? मानवी का रूप बहुत देखा ?

दर्पण उसकी ओर बढ़ा देती है।

लीजिए !

नंद दर्पण उसके हाथ से ले लेता है।

वहाँ जाकर खड़े हो जाइए।

नंद आगे के दीपाधार के पास चला जाता है।

इस तरह नहीं···।

पास जाकर दर्पण उसके साथ सटा देती है।

इस तरह। *(चंदन की कटोरी हाथ में लेकर)* अब मुझे विशेषक बनाने दीजिए···।

दर्पण में देखती हुई विशेषक बनाने के लिए हाथ माथे के पास ले जाती है। तभी दूर से भिक्षुओं और भिक्षुणियों का समवेत स्वर सुनाई देने लगता है। उसका हाथ पल-भर रुका रहता है। स्वर क्रमशः पास आता जाता है।

नेपथ्य :

धम्मं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि
बुद्धं शरणं गच्छामि···।

पृष्ठभूमि में यह स्वर निरंतर चलता रहता है।

सुंदरी : ***(सहसा अपने को सहेजकर)***
देखिए दर्पण हिल गया। आप कुछ देर स्थिर खड़े नहीं रह सकते?

उस स्वर से पैदा हुई नंद की अस्थिरता उसके चेहरे और हाथों से प्रकट होती है।

नंद : ***(दर्पण को ठीक रखने का प्रयत्न करता हुआ)***
अब ठीक है?

सुंदरी :
नहीं।

नंद :
अब?

सुंदरी :
ऊँ-हूँ।

नंद : ***(प्रयत्नपूर्वक ध्यान सुंदरी के चेहरे पर केंद्रित करके)***
अब?

सुंदरी :
अब कुछ ठीक है। देखिए, अब नहीं हिलिएगा···।

फिर विशेषक बनाने का प्रयत्न करती है। नंद दर्पण को अपने से इतना सटा लेता है कि उसकी साँस से वह धुँधला जाता है। सुंदरी हाथ रोककर रोषपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखती है।

रहने दीजिए।

जाकर चंदन-लेप की कटोरी शृंगारकोष्ठ में रख देती है।

नंद :

क्यों, अब क्या हुआ ? दर्पण हिला तो नहीं ?

सुंदरी :

हिला नहीं, पर आपकी साँस से धुँधला गया है। आप जान-बूझकर···।

नंद : ***(धुँधले दर्पण को देखता हुआ)***

नहीं, मैंने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया।

अपने उत्तरीय से दर्पण को पोंछ देता है।

लो, अब देखो।

सुंदरी :

आप दर्पण रख दीजिए। मुझे विशेषक नहीं बनाना है।

नंद :

क्यों ?

सुंदरी :

मैंने कह दिया है, मुझे नहीं बनाना है।

शृंगारकोष्ठ के पास से हटकर चबूतरे की ओर चली जाती है। नंद दर्पण की छाया उस पर डालने का प्रयत्न करता है।

नंद :

जब तक विशेषक नहीं बनाओगी, मैं तुम्हें दर्पण की छाया से बाहर नहीं जाने दूँगा।

सुंदरी चबूतरे के पास से हटकर झूले की ओर चली जाती है। नंद दर्पण की छाया उधर डालता है।

अब भी दर्पण की छाया तुम्हारे ऊपर है और तुम्हारी छाया दर्पण के अंदर है।

सुंदरी :

आप दर्पण रख दीजिए। मुझे विशेषक नहीं बनाना है, नहीं बनाना है।

दर्पण की छाया से बचने के लिए झूले से उठकर पीछे के दीपाधार के पास से होती हुई चबूतरे के ऊपर आ जाती है। नंद दर्पण ऊँचा उठाकर उस पर छाया डालने का प्रयत्न करता है। भिक्षुओं का समवेत स्वर बहुत पास आकर एकाएक रुक जाता है। स्वर के रुकते ही दर्पण नंद के हाथ में सँभल न पाने से नीचे गिरकर टूट जाता है।

सुंदरी : ***(चौंककर)***

दर्पण टूट गया ?

नंद स्तब्ध-सा पहले सुंदरी को, फिर टूटे हुए दर्पण को देखता है। सुंदरी चबूतरे पर जहाँ-की-तहाँ बैठ जाती है। भिक्षुओं और भिक्षुणियों का समवेत स्वर फिर आरंभ हो जाता है और अब क्रमशः दूर होता जाता है।

नेपथ्य :

धम्मं शरणम् गच्छामि
संघं शरणम् गच्छामि
बुद्धं शरणम् गच्छामि···।

नंद कुछ पल खोया-सा खड़ा रहता है, फिर बढ़कर सुंदरी के पास आता है।

नंद :

मुझे खेद है सुंदरी···!

समवेत स्वर क्रमशः मंद पड़ता हुआ विलीन होने लगता है।

देखो, सुंदरी···!

सुंदरी जड़-सी उसकी ओर देखती है और चबूतरे से उठकर आगे के दीपाधार के पास आ जाती है।

(उसके पास आकर) सुंदरी !

सुंदरी :

आप अपने कक्ष में चले जाइए। मैं कुछ देर एकांत में रहना चाहती हूँ।

नंद पल-भर अस्थिर-सा खड़ा रहने के बाद सिर झुकाए चबूतरे पर चला जाता है। सुंदरी एक बार उसकी ओर देखकर फिर सामने देखने लगती है।

सुंदरी :

आपसे कहा था मैं कुछ देर एकांत में रहना चाहती हूँ।

नंद :

परंतु मुझे यहाँ से जाने का अधिकार नहीं है। मैं दिन-भर तुम्हारे पास रहने का वचन दे चुका हूँ।

सुंदरी :

वचन मुझे दिया था न? अब मेरी ओर से आप वचनमुक्त हैं।

नंद :

परंतु मैं वचनमुक्त होना नहीं चाहता।

आकर टूटे हुए दर्पण को उठाता है और उसे देखता हुआ ले जाकर शृंगारकोष्ठ में आधार पर रख देता है। फिर लौटकर सुंदरी के पास आता है।

सुनो।

सुंदरी न कुछ कहती है, न उसकी ओर देखती है।

जो टूटा है, वह तो काँच का दर्पण है। तुम कहा करती हो न कि तुम्हारा दर्पण···।

सुंदरी :

उस बात को जाने दीजिए।

नंद :

अच्छा, आओ, वहाँ चलकर बैठो।

उसे मत्स्याकार आसन की ओर ले जाना चाहता है।

सुंदरी :

मैं आपसे एक बात जानना चाहती हूँ।

नंद :

वहाँ आ जाओ, बैठकर बात करो।

उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए उसे मत्स्याकार आसन तक ले जाता है और कंधों पर हाथ रखकर उसे बिठा देता है।

अब बताओ क्या जानना चाहती हो ?

सुंदरी :

जानना चाहती हूँ कि क्या दर्पण का टूटना सचमुच अकारण ही था, ···या उस समय आप कोई और बात सोच रहे थे ?

नंद इस बीच शृंगारकोष्ठ के पास आकर चंदन-लेप की कटोरी वहाँ से उठा लेता है और लेप को तीली से हिलाता हुआ सुंदरी के पास लौट आता है।

नंद :

लाओ, मैं अपने हाथों से तुम्हारे माथे पर विशेषक बना देता हूँ।

सुंदरी :

आपने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया।

नंद उसके पास बैठ जाता है।

नंद :

यह तुम कैसे कहती हो कि मैं उस समय और कुछ सोच रहा था ?

सुंदरी :

आप उनकी बात नहीं सोच रहे थे ?

नंद :

किनकी ?

सुंदरी :

जिन्होंने आज भिक्षुणी के रूप में दीक्षा ली है।

नंद :

इसलिए कि भिक्षुओं की मंडली उस समय भवन के बाहर आकर रुकी थी ?

सुंदरी :

और इसलिए भी कि ज्योंही भिक्षुओं का स्वर रुका, त्योंही···।

नंद :

मैं इतना ही कह सकता हूँ कि यह तुम्हारे मन का भ्रम है, और कुछ नहीं। मैंने दर्पण अधिक ऊँचा उठा दिया था, इसलिए उसका संतुलन बना न रह सका···।

सुंदरी :

सच कह रहे हैं ?

नंद :

तुमसे झूठ क्यों कहूँगा ?

सुंदरी एक बार खोजती-सी दृष्टि से उसकी ओर देखकर वहाँ से उठ पड़ती है।

सुंदरी : ***(आगे के दीपाधार की ओर आती हुई)***

आप उस समय यह नहीं सोच रहे थे कि भिक्षुओं की मंडली में शायद वे भी होंगी, ···शायद आपसे भिक्षा लेने के लिए ही वे इस द्वार पर रुकी होंगी ?

नंद :

मैं तो नहीं, पर लगता है तुम यह बात सोच रही थीं। इसीलिए तुम्हें लगा कि शायद मैं भी···

सुंदरी : ***(शृंगारकोष्ठ की ओर जाती हुई)***

आप मुझसे कहते हैं कि मैं यह बात सोच रही थी !

···मुझे यही बात तो उस समय सोचनी थी !

शृंगारकोष्ठ के पास आकर टूटे हुए दर्पण में अपना प्रतिबिंब देखती है।

जाने कैसा-सा लगता है···अपना टूटा हुआ प्रतिबिंब देखकर।

हल्की-सी सिहरन शरीर में दौड़ जाती है।

इधर आइए।

नंद उठकर पास आता है।

इसमें मुझे देखिए।

नंद :

उसमें क्यों देखूँ? बाहर जो देख रहा हूँ।

सुंदरी :

बाहर भी ऐसी ही अपरूप लगती हूँ।

नंद :

टूटे हुए दर्पण में अपने को देखते जाना बहुत अच्छा लग रहा है?

सुंदरी : ***(दर्पण से आँखें हटाकर)***

अच्छा लग रहा है? यह दो भागों में बँटा हुआ सीमंत, खंडित मस्तक, खंडित चेहरा, खंडित···

नंद उसे आगे बोलने से रोक देता है।

नंद :

और नहीं।···यह अखंड रूप यदि तुम अपनी आँखों से देख पातीं···।

सुंदरी पल-भल उसकी ओर देखती रहती है।

सुंदरी :

आप कह रहे थे अपने हाथों से मेरा प्रसाधन करेंगे?

नंद :

हाँ। तुम ऐसे ही रुकी रहो, मैं अभी··· *(मत्स्याकार आसन की ओर जाता हुआ)* अभी क्षण-भर में तुम्हारे माथे पर मैं पूरा आकाश चित्रित कर दूँगा। *(मत्स्याकार आसन से चंदन की कटोरी उठाकर वापस आता हुआ)* बीच में सूर्य

और उसके दोनों ओर सोम और बृहस्पति···ऊपर और नीचे शेष चारों ग्रह तथा कर्णफूलों के पास राहु और केतु···।

सुंदरी इस बीच शृंगारकोष्ठ से थोड़ा आगे आ जाती है।

सुंदरी :

आप मेरा सारा प्रसाधन करेंगे ?

नंद :

क्यों नहीं करूँगा ?

सुंदरी :

अच्छा, तो पहले विशेषक बना दीजिए।

नंद थोड़ा-सा लेप उँगली पर लेकर उसके माथे पर लगाने लगता है कि सहसा सामने का एक किवाड़ खटखटा उठता है।

नंद : ***(सहसा चौंककर)***

कोई आया है ?

बाहर हवा का शब्द सुनाई देता है। बंद किवाड़ फिर धीरे-धीरे खुल जाता है।

सुंदरी :

हवा है।

नंद :

ऐसी हवा ! ठहरो, मैं किवाड़ बंद कर दूँ।

चंदन-लेप मदिराकोष्ठ पर रखकर सामने के द्वार की ओर जाता है। हवा का तेज शब्द सुनाई देता है। द्वार के पास पहुँचता ही है कि दोनों किवाड़ सहसा बंद हो जाते हैं। वह थोड़े प्रयत्न से उन्हें खोलता है। खोलते ही बाहर से ऐसा शब्द सुनाई देता है जैसे कई कबूतर एक-साथ गुटर-गूँ-गुटर-गूँ कर रहे हों। वह धीरे से किवाड़ बंद कर देता है।

(किवाड़ बंद करते हुए) एकाएक ऐसी हवा कैसे चलने लगी ?

सुंदरी : ***(उसकी ओर जाती हुई)***
हवा भी किसी से पूछकर चलती है क्या ?

नंद :
तुमने सुना, किवाड़ खोलते ही कैसा स्वर सुनाई दिया ?

सुंदरी :
हवा से डरे हुए कबूतर हैं। पहले नहीं बोलते थे क्या ?

नंद :
ऐसा नहीं। वह स्वर बहुत असाधारण-सा था।
ठहरो···फिर से सुनो···।

फिर किवाड़ खोलता है। इस बार किवाड़ सहज ढंग से खुल जाते हैं। बाहर हवा का शब्द अपेक्षाकृत हल्का सुनाई देता है। कबूतरों का स्वर भी अपेक्षया हल्का पड़ गया है। लगता है दूर एक खुटकबढ़ैया लगातार लकड़ी पर चोंच से प्रहार कर रही हो। नंद किवाड़ फिर बंद कर देता है। सुंदरी उसके पास से हटकर शृंगारकोष्ठ की ओर आती है।

सुंदरी :
आपका मन इतना कच्चा है, यह मैं नहीं जानती थी।

वह अभी शृंगारकोष्ठ तक पहुँच भी नहीं पाती कि दाईं ओर के द्वार से अलका घबराई हुई-सी आती है।

अलका :
देवि !···कुमार !

सुंदरी : ***(सहसा रुककर)***
क्या बात है अलका ?···क्या हुआ है ?···श्यामांग ठीक तो है न ?

अलका : *(हाँफती हुई)*

वह···वह ! अभी सो रहा होगा । मैं आपसे···आपसे एक और बात कहने आई थी··· ।

सुंदरी : *(शृंगारकोष्ठ की ओर बढ़ती हुई)*

कोई ऐसी बात है जो इसी समय कहानी आवश्यक थी ?

अलका :

हाँ, देवि !···अभी-अभी मैं बाहर से आ रही थी,···तो देखा···देखा कि आँगन के द्वार पर एक भिक्षुमूर्ति भिक्षा लेने के लिए खड़ी है ।···दो बार उसने भिक्षा की याचना की, फिर सहसा लौट पड़ी ।···तभी मैंने उसे आलोक में देखा ।···देखा कि वे स्वयं···स्वयं गौतम बुद्ध हैं··· । मैं उसी समय···सूचना देने के लिए···यहाँ चली आई··· ।

पल-भर निस्तब्धता रहती है । तीनों में से कोई बात नहीं करता । नंद सिर झुकाए, बाँहें लपेटे चबूतरे की ओर आता है ।

नंद : *(अलका से)*

तुमने ठीक देखा है कि स्वयं भाई···कि स्वयं गौतम बुद्ध भिक्षा के लिए आए थे ?

अलका :

किसी को पहचानने में भूल कर सकती हूँ, पर उन्हें पहचानने में मैं कभी भूल नहीं कर सकती । दो बार याचना करने पर भी जब कोई उनके पात्र में भिक्षा डालने नहीं आया, तो आँखें उठाकर पल-भर वे इस गवाक्ष की ओर देखते रहे । फिर सहसा लौट पड़े··· ।

सुंदरी :

तू जा अलका ! अच्छा किया जो आकर तूने सूचना दे दी ।

अलका :

आप कहें, तो मैं जाकर··· ।

सुंदरी :

तू अपने कक्ष में जा और कुछ देर विश्राम कर। मैंने सुना है तू रात-भर सोई नहीं है।

अलका एक बार सुंदरी की ओर, फिर नंद की ओर देखती है और सिर झुकाकर चली जाती है। नंद चबूतरे के पास से हटकर झूले की ओर चला जाता है। सुंदरी पल-भर अपने स्थान पर रुकी रहती है, फिर मदिराकोष्ठ से चंदन-लेप की कटोरी उठाकर नंद के पास चली जाती है। नंद खोई-खोई-सी आँखों से उसे देखता है।

सुंदरी : ***(कटोरीवाला हाथ ऊपर उठाकर)***

नंद : ***(जैसे वह भूली हुई बात एकाएक याद हो आई हो)***

विशेषक···हाँ··· *(कटोरी के लिए हाथ बढ़ाकर)* लाओ, दो मुझे।

सुंदरी उसके बढ़े हुए हाथ के पास से कटोरी हटा लेती है।

सुंदरी :

नहीं, इस मन से नहीं।···पहले बताइए, क्या सोच रहे हैं?

नंद : ***(अव्यवस्थित भाव से)***

सोच···सोच कुछ नहीं रहा।···हाँ, सोच रहा था कि···

सुंदरी :

कि उन्हें कैसा लगा होगा? उन्होंने मन में क्या सोचा होगा?

नंद : ***(मदिराकोष्ठ की ओर आता हुआ)***

हाँ, यह भी और साथ यह भी कि··· *(सुंदरी की ओर देखकर)* तुम्हें यह नहीं लगता कि मुझे जाकर एक बार उनसे इस प्रमाद के लिए क्षमा-याचना करनी चाहिए?

सुंदरी चंदन-लेप की कटोरी लिए हुए शृंगारकोष्ठ के पास आ जाती है और उसे रखकर पल-भर सोचती-सी खड़ी रहती है।

सुंदरी :

ऐसा सोचते हैं, तो एक बार चले क्यों नहीं जाते ?

नंद : *(उसकी ओर जाता हुआ)*

सोचता हूँ कि जाना हो, तो···।

सुंदरी :

इसी समय जाना चाहिए, यही न ? तो जाइए न ! मुझे दिए हुए वचन के कारण विवशता का अनुभव करते हैं ? वह विवशता नहीं रहेगी।

नंद :

परंतु···।

सुंदरी :

मैं अपनी ओर से आपको वचनमुक्त कर रही हूँ

नंद :

तुम मन से कह रही हो न, चला जाऊँ ?

सुंदरी : *(पल-भर उसे देखते रहने के बाद स्नेह, सहानुभूति और आशंका-मिश्रित स्वर से)*

मन से नहीं तो कैसे ?

नंद : *(उसके स्नेह से प्रभावित)*

मैं अधिक समय नहीं लूँगा। नदी-तट पर आने-जाने में जितना समय लगेगा, उसके अतिरिक्त घड़ी-भर समय और···।

सुंदरी : *(चेष्टापूर्वक मुस्कराकर)*

मैं प्रतीक्षा करूँगी।

नंद पल-भर पलकें मूँदे रहता है, फिर सहसा चलने के लिए प्रस्तुत हो जाता है।

नंद :

अच्छा···!

उसका पैर द्वार की ओर बढ़ता ही है कि :

सुंदरी :

रुकिए।

नंद रुककर उसकी ओर देखता है। सुंदरी चंदनलेप की कटोरी लेकर उसके पास चली जाती है।

सुंदरी :

पूरा आकाश नहीं, पर एक ग्रह तो माथे पर अंकित कर ही दीजिए।

नंद कटोरी से चंदन लेकर उसके माथे पर एक बिंदु अंकित कर देता है और हल्के-से उसकी ठोड़ी को छू देता है।

और जाने से पहले एक और वचन देते जाइए।···

नंद प्रश्नात्मक दृष्टि से उसे देखता है।

···कि लौटकर स्वयं ही इस विशेषक को पूरा करेंगे। आपके लौटने तक मैं इस बिंदु को सूखने नहीं दूँगी।

नंद :

परंतु यह बिंदु तो कुछ ही क्षणों में सूख जाएगा, और मुझे आने में···।

सुंदरी :

मैंने कहा है मैं आपके आने तक इसे सूखने नहीं दूँगी··· पानी से भिगोकर गीला रखूँगी। आपके आने पर ही और सब प्रसाधन भी करूँगी, तभी अपने बाल भी बाँधूँगी।

नंद विभोर भाव से सिर हिलाता है। अनमने ढंग से द्वार की ओर बढ़ता है। द्वार के पास पहुँचकर रुक जाता है और सुंदरी की ओर देखता है। सुंदरी पास जाकर हाथ के सहारे से उसे जाने के लिए प्रेरित करती है।

सुंदरी :

अब जाइए।

नंद द्वार से बाहर जाकर भी एक बार मुड़कर उसकी ओर

देख लेता है। फिर चला जाता है। सुंदरी गवाक्ष के पास जा खड़ी होती है। गवाक्ष के बढ़ते हुए प्रकाश के आगे उसकी आकृति एक छायाकृति में बदलने लगती है। तभी श्यामांग के प्रलाप का हल्का-हल्का स्वर सुनाई देता है:

नेपथ्य :

पानी···पानी नहीं है···लहरों में पानी नहीं है···एक किरण···कोई एक किरण ला दो···अँधेरा···यह घना गुमसुम अँधेरा···यह अँधेरा मुझसे नहीं सहा जाता···यह छाया···यह छाया मुझसे नहीं ओढ़ी जाती···यह छाया मेरे ऊपर से हटा दो···एक किरण···कोई एक किरण···

प्रकाश धीरे-धीरे मंद पड़ता है और सुंदरी की छायाकृति अँधेरे में विलीन होने लगती है।

अंक 3

कक्ष में सबकुछ व्यवस्थित है। दीपाधारों के सब दीपक जल रहे हैं। फिर भी एक सूनेपन का आभास होता है। कक्ष में व्यक्ति कोई नहीं है। सामने का द्वार बंद है। कुछ क्षण निःस्तब्धता। फिर उद्यान की ओर से सुंदरी और अलका के स्वर सुनाई देते हैं:

नेपथ्य : ***(सुंदरी:)***

किसी ने भी नहीं देखा यह कब हुआ ?

(अलका:)

नहीं, देवि !

(सुंदरी:)

यह भी पता नहीं कि घटना दिन की है या रात की ?

(अलका:)

ना ! दिन-भर इधर आने का अवसर ही नहीं मिला।

सुंदरी और अलका दाईं ओर के द्वार से आती हैं। सुंदरी के बाल खुले हैं; वेश उसी तरह है जैसे दूसरे अंक के अंत में था। चेहरे के भाव में एक कठोरता है। आँखों से लगता है जैसे एक चुनौती से लड़ रही हो। अलका के चेहरे से थकान टपकती है परंतु कर्तव्यवश वह अपनी थकान को ढके रहना चाहती है।

सुंदरी :

आँखों से देखकर भी मुझे विश्वास नहीं हो रहा···कैसे संभव है कि एकाएक इस तरह···?

अलका :

मैंने देखा, तो सोचा आँखों को कुछ हो गया है। जब विश्वास हुआ कि नहीं, आँखों का दोष नहीं, तो लगा कि इस अपराध की साझीदार मैं भी हूँ। पहले सोचा, आपको अभी सूचना न दूँ, पर फिर मुझसे रहा नहीं गया···।

सुंदरी :

सूचना न देने से वे लौट न आते।···परंतु अलका···

जाकर मत्स्याकार आसन पर बैठ जाती है।

मैं अब भी नहीं सोच पा रही कि यह हुआ कैसे·· राजहंस स्वयं उड़कर चले गए, इसमें भी विश्वास नहीं होता···और यह भी मन नहीं मानता कि किसी ने उन्हें···।

अलका पास जाकर चबूतरे के सहारे खड़ी हो जाती है।

अलका :

ऐसा साहस किसी का नहीं हो सकता कि वह ताल से उन्हें चुरा ले जाता।

सुंदरी : *(अंतर्मुख भाव से)*

यही तो सोच रही हूँ कि कौन ऐसा है जो इस तरह का दुःसाहस कर सकता।

अलका उस संकेत सें कुछ अव्यवस्थित हो जाती है।

अलका :

जिस एक व्यक्ति पर संदेह हो सकता था···वह तो सारी रात, सारा दिन उस कक्ष से बाहर नहीं गया। अधिकांश समय मैं स्वयं···।

सुंदरी :

नहीं, मुझे उस पर संदेह नहीं। श्यामांग उन्माद में भी ऐसी बात न सोच पाता।

अलका :

तो आप किसके लिए सोचती हैं कि···।

सुंदरी :

किसी के लिए भी तो नहीं सोच पाती···परंतु फिर यह भी विचार आता है कि राजहंस आहत थे···कम-से-कम एक उनमें अवश्य आहत था। कल कैसा क्रंदन उसका सुना था? क्या उनके पंखों में इतनी शक्ति रही होगी कि अपनी इच्छा से उड़कर कहीं चले जाते? और जिस ताल में इतने दिनों से थे, उसका अभ्यास, उसका आकर्षण··· क्या इतनी आसानी से छूट सकता था?

अलका :

संभव है आहत होना ही कारण रहा हो उनके उड़कर चले जाने का···।

सुंदरी : होने को कुछ भी कारण हो सकता है। संभव है यही कारण रहा हो।

इधर-उधर देखती है जैसे उसे किसी चीज की आवश्यकता हो। अलका चबूतरे से एक तकिया उठाकर उसके पास ले आती है।

अलका :

कुछ देर विश्राम नहीं करेंगी?

तकिया उसकी बाँह के नीचे रख देती है।

सुंदरी :

दिन-भर विश्राम के अतिरिक्त और किया ही क्या है?

अलका :

यह यदि विश्राम था, तो···।

सुंदरी :

देख, मैं उस विषय की चर्चा फिर नहीं सुनना चाहती।

अलका :

नहीं, मैं उस विषय की चर्चा नहीं कर रही।

शृंगारकोष्ठ के पास जाकर वहाँ से सुगंधिजल की कटोरी उठा लाती है।

आप अनुमति दें, तो मैं···।

सुंदरी :

तू बार-बार क्यों अनुरोध करती है?

अलका :

अनुरोध कहाँ कर रही हूँ? अनुरोध कर सकती, तो आपको दिन-भर बिना प्रसाधन रहने देती? बिना प्रसाधन के आपका रूप···।

सुंदरी : *(कुछ तीखे स्वर में)*

मेरा यही रूप क्या स्वाभाविक नहीं है···मुझे किसी प्रसाधन की आवश्यकता नहीं।

अलका :

क्षमा चाहती हूँ, मेरा यह अभिप्राय नहीं था।···और प्रसाधन के लिए तो मैं कह भी नहीं रही। इतना ही कह रही हूँ कि···।

सुंदरी चिढ़कर वर्जना की दृष्टि से उसकी ओर देखती है, परंतु उसे देखते ही चेहरे का भाव बदल जाता है।

सुंदरी :

तू स्वयं इतना थकी है, फिर भी क्यों ऐसा हठ कर रही है?

अलका :

हठ नहीं कर रही, विनय से कह रही हूँ। संभव है कुमार

को लौटकर आने में अभी और समय लगे। तब तक आप···।

सुंदरी मत्स्याकार आसन से उठ खड़ी होती है।

सुंदरी : ***(आगे के दीपाधार की ओर आती हुई)***

मैंने कहा था मैं इस विषय की चर्चा नहीं सुनना चाहती।

अलका अपराध भाव से आँखें झुकाए अपने स्थान पर खड़ी, रहती है।

(सहसा अलका की ओर मुड़कर) तू समझती है कि मैं उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रही हूँ? *(आँखें उस ओर से हटाकर अंतर्मुख भाव से)* प्रतीक्षा कर रही होती, तो अपने माथे का विशेषक, यह बिंदु, सूख जाने न देती। परंतु जितना समय इसे गीला रखना चाहिए था, उससे कहीं अधिक समय मैंने इसे गीला रखा। एक पहर, दो पहर, तीन पहर। हर बीतता हुआ क्षण मेरे प्रयत्न का उपहास उड़ाता था, फिर भी मैं अपने अंदर के विरोध से लड़ती रही, मन के विद्रोह को किसी तरह समझाती रही। परंतु एक क्षण आया जब वह प्रयत्न मन से हार गया। मेरा गीला हाथ माथे तक जाकर लौट आया और मैंने उसे फिर गीला नहीं किया।

सहसा शृंगारकोष्ठ के पास जाकर वहाँ से एक कटोरी उठा लेती है।

(कटोरीवाला हाथ अलका की ओर बढ़ाकर) यह कटोरी है जिसमें मैंने पानी भरकर रखा था। कटोरी खाली नहीं हुई थी, पर मैंने स्वयं इसे खाली कर दिया।

कटोरी को एक झटके से फिर शृंगारकोष्ठ पर रख देती है।

अब मुझे प्रतीक्षा नहीं है अलका! मैं अपने स्वाभिमान को और नहीं छल सकती। *(लौटकर अलका की ओर आती*

हुई) वे जब भी लौटकर आएँ, अपने घर में आएँगे, कोई उनसे कुछ कहेगा नहीं। और यदि आने में कोई बाधा है, तो···

अलका : *(बढ़कर उसकी ओर आती हुई)*
ऐसी बाधा की बात आप सोच सकती हैं ?

सुंदरी :
मैंने कहा है अलका, मैं अपने स्वाभिमान को और नहीं छल सकती। नदी-तट तक जाने-आने में जितना समय लगता है, उसके अतिरिक्त घड़ी-भर समय और···यह उन्होंने कहा था। मैंने विश्वास से उन्हें भेजा था। चाहती, तो उस समय उन्हें रोक भी सकती थी। परंतु रोकना मैंने नहीं चाहा···।

झूले के पास जाकर एक हाथ उस पर रख लेती है।

क्योंकि रोकना दुर्बलता होती। मन में कहीं यह साल बनी रहती कि मैंने उन्हें नहीं जाने दिया कि कहीं उसका अर्थ होता कि उन पर और अपने पर मुझे विश्वास नहीं था।

अलका सुगंधिजल की कटोरी लिए हुए पास आ जाती है।

अलका :
आप कुछ देर के लिए यहीं न बैठ जाएँगी ?

सुंदरी उसे देखती है और आत्म-समर्पण के भाव से झूले पर बैठ जाती है। अलका हल्के हाथों से उसके माथे पर सुगंधिजल लगाने लगती है।

सुंदरी :
तेरा यह स्नेह और विश्वास।···कभी-कभी सोचती हूँ कि तू मेरी दासी क्यों है ?···क्यों नहीं तू···।

अलका :

मेरी बात मानेंगी ?

सुंदरी :

तेरी बात मानती कब नहीं हूँ ?

अलका : *(एक ओर से माथे के दूसरी ओर आती हुई)*

कुछ देर यहीं लेट रहें। नींद आने से मन स्वस्थ हो जाएगा। मैं तब तक किसी को भेजती हूँ कि जाकर देख आए···।

सुंदरी :

नहीं, अलका ! किसी को कहीं भेजना नहीं है। भेजकर बुलाना होता, तो मैं बहुत पहले ही भेज देती। मैं कह चुकी हूँ कि उनके आने में यदि बाधा हो, तो···।

अलका :

वे अवश्य आएँगे। आप तब तक कुछ देर सो रहें। न आने का एक कारण यह भी तो हो सकता है कि समय पर न आ पाने से उनका संकोच ही उन्हें रोके हो।···या आर्य मैत्रेय के साथ आखेट पर निकल गए हों !

सुंदरी : *(अंतर्मुख भाव से)*

आखेट पर ?···आर्य मैत्रेय के साथ ?

गले से एक अस्पष्ट-सा स्वर निकल पड़ता है।

(उसके हाथ हटाती हुई) बस अब और नहीं।

अलका कटोरी लिए हुए उठकर शृंगारकोष्ठ की ओर जाती है और कटोरी रखकर वहाँ से रेशमी वस्त्र का एक टुकड़ा निकाल लाती है।

अलका :

यह नहीं, तो भाई से विदा लेने में संकोच हो रहा होगा। और कोई कारण नहीं हो सकता।

उसका माथा वस्त्र से पोंछ देती है और लौटकर वस्त्र

शृंगारकोष्ठ में नीचे रख देती है।

आप विश्राम कर लें। वे ज्यों ही लौटकर आएँगे, मैं आपको जगा दूँगी।

मत्स्याकार आसन से उठाकर तकिया झूले में लगा देती है।

अब लेट जाएँ।···कह रही हूँ कि कुछ देर के लिए लेट जाएँ।···अभी कह रही थीं, आप मेरी बात मानती हैं।

सुंदरी फिर आत्मसमर्पण के भाव से अपने को उसके हाथों में छोड़ देती है। अलका सहारा लेकर उसे झूले में लिटा देती है और कुछ पल झूले को हिलाती रहती है। फिर एक बार झुककर उसे देख लेती है और झूले को हिलता छोड़कर दबे पैरों बाईं ओर के द्वार के पास आ जाती है।

(द्वार से बाहर देखती हुई दबे हुए स्वर में) नीहा!

(पल-भर के व्यवधान के बाद फिर) नीहा!

नीहारिका जैसे सोई हुई उठकर आती है।

तू सो रही थी?

नीहारिका :

नहीं, सो नहीं रही थी।

अलका होंठों पर उँगली रखकर उसे धीरे बोलने का संकेत करती है।

कल रात-भर जागते रहने से थोड़ा ऊँघ गई थी।

अलका :

श्वेतांग लौटकर नहीं आया?

नीहारिका :

मैंने उसे नहीं देखा। जाकर देखती हूँ।

अलका :

वह लौट आया हो, तो उससे कहना कि···*(पल-भर*

सोचकर) कहना कि वह··· *(एक बार झूले की ओर देख लेती है)*···कि वह यहीं आ जाए।

नीहारिका जाने लगती है।

और सुन।

नीहारिका रुककर उसकी ओर देखती है।

उससे कहना कि··· *(झूले की ओर संकेत करके)* अभी इन्हें किसी तरह सुलाया है। आकर ऐसे स्वर में बात न करे कि नींद टूट जाए।

नीहारिका सिर हिलाकर चली जाती है। अलका एक बार दबे पैरों झूले के पास जाकर सुंदरी को देख लेती है और उसे वस्त्र ओढ़ा देती है। फिर शृंगारकोष्ठ के पास जाकर वहाँ की सामग्री को सहेजती है। चंदन-लेप की सूखी कटोरी उठाकर दाईं ओर से बाहर ले जाती है और पल-भर बाद भरी हुई कटोरी लिए हुए लौट आती है। उसे यथास्थान रख रही होती है कि उसी ओर से श्वेतांग आता है। अलका उसे धीरे बोलने का संकेत करती है और हल्के पैरों से उसके पास चली जाती है।

अलका :

उनसे मिले ?

श्वेतांग धीरे-से सिर हिलाता है।

श्वेतांग :

नहीं।

अलका :

उन्हें देखा भी नहीं ?

श्वेतांग :

ना। देखा भी नहीं।

अलका :

वे वहाँ नहीं हैं ?

श्वेतांग :

वहाँ से कब के जा चके हैं।

अलका :

जा चुके हैं? अकेले?

श्वेतांग :

हाँ, अकेले।

अलका :

यह पता नहीं चला, किधर गए हैं?

श्वेतांग :

ठीक से पता नहीं चला। इतना पता चला कि पहले बहुत देर तक वहाँ थे। जिस समय वहाँ पहुँचे तथागत इतने लोगों से घिरे हुए थे कि कितनी ही देर वे उनके सामने नहीं जा पाए। प्रतीक्षा करते हुए कितनी ही बार लौट आने के लिए अस्थिर हुए, पर लौटने का साहस नहीं कर सके···।

अलका शृंगारकोष्ठ में अपना छोड़ा हुआ काम पूरा करने लगती है। एक बार टूटे हुए दर्पण को आधार स्थान से उठाकर देखती है, फिर उसे वहीं रखकर वस्त्र-खंड से पोंछ देती है।

अलका :

फिर?

श्वेतांग : *(उस थोड़े-से स्थान पर धीरे-धीरे टहलता हुआ)* अंत में किसी तरह अवसर मिला, तो उन्होंने प्रणाम करके तथागत से अपने यहाँ आतिथ्य स्वीकार करने के लिए कहा।

अलका :

आतिथ्य स्वीकार करने के लिए कहा?···और उन्होंने स्वीकार कर लिया?

श्वेतांग :

नहीं। उन्होंने इसका उत्तर न देकर अपना भिक्षापात्र कुमार के हाथों में दे दिया।

अलका : *(स्तंभित-सी)*

उन्होंने अपना भिक्षापात्र कुमार के हाथों में दे दिया ?

श्वेतांग :

बतानेवालों ने मुझे यही बताया है, कुमार उस समय इतने अव्यवस्थित थे कि भिक्षापात्र हाथ में लिए हुए ही लौटकर यहाँ आने लगे।

सुंदरी कुनमुनाकर झूले पर करवट बदलती है। अलका श्वेतांग को चुप रहने का संकेत करके झूले के पास चली जाती है और यह निश्चय करके कि वह सो रही है, धीरे-से झूले को हिलाकर लौट आती है।

अलका :

गौतम बुद्ध ने उन्हें रोका ?

श्वेतांग :

कहकर नहीं रोका। कुछ क्षण स्थिर दृष्टि से उन्हें देखते रहे, फिर उन्हें अपने पीछे आने के लिए कहकर विहार में चले गए।

अलका :

कैसा अंतर्द्वंद्व रहा होगा कुमार के लिए।

श्वेतांग :

न चाहते हुए भी कुमार को उनके पीछे जाना पड़ा। सुना है वहाँ जाकर तथागत ने उन्हें उपदेश दिया और भिक्षु आनंद से उन्हें दीक्षित करने के लिए कहा...।

अलका : *(स्तब्ध होकर)*

उन्हें दीक्षित करने के लिए कहा ?

श्वेतांग :

हाँ। कुमार के विरोध करते रहने पर भी उनके केश काट दिए गए। परंतु कुमार उसी समय उठकर वहाँ से चले आए। उनकी आँखों में उस समय आँसू थे—जाने केश कट जाने के कारण या अपने मन की बात न कह पाने के कारण···।

अलका :

और उसके बाद ?

श्वेतांग :

जब वे वहाँ से चले, बहुत विक्षुब्ध थे। लगता था जैसे किसी से जूझना चाहते हों और जूझ न पाए हों। जिन लोगों ने उन्हें उस स्थिति में देखा, उन्हें डर भी लगा और सहानुभूति भी हुई। ऐसा भाव था उनका कि यदि स्वयं गौतम बुद्ध उस समय उनके सामने आकर कुछ कहते, तो शायद वे उनसे भी···।

अलका :

परंतु उसके बाद वे गए कहाँ ?

श्वेतांग :

यही पता नहीं चला। लोगों का कहना है कि उसके बाद उन्हें घने जंगल की ओर जाते देखा गया था।

अलका :

घने जंगल की ओर ? परंतु शस्त्रास्त्र तो उनके पास नहीं थे।

श्वेतांग :

इसीलिए विश्वास नहीं होता। निहत्थे वे जंगली पशुओं के बीच क्यों गए होंगे, यह समझ में नहीं आता। यहाँ भी लौटकर नहीं आए, इसलिए संदेह होता है कि कहीं···।

अलका उसे बीच में ही रोक देती है।

अलका :

अमंगल की बात मत सोचो। ···जंगली पशुओं के बीच निहत्थे जाकर भी कुमार का अनिष्ट नहीं होगा। उस विक्षुब्ध मनःस्थिति में उन्होंने यहाँ लौटकर आना नहीं चाहा होगा, इसीलिए शायद कहीं और चले गए हों···।

श्वेतांग :

संभव है ऐसा ही हो। मैंने एक बार सोचा कि आर्य मैत्रेय को साथ लेकर उन्हें ढूँढ़ने जाऊँ, परंतु···।

अलका प्रश्न दृष्टि से उसकी ओर देखती है।

अलका :

परंतु क्या ?

श्वेतांग :

सुना है आर्य मैत्रेय आज दीक्षित हो गए हैं।

अलका : ***(जैसे विश्वास न हो)***

आर्य मैत्रेय भी ?

श्वेतांग :

हाँ, वे भी। ···अब यदि देवि से आदेश प्राप्त हो तो मैं कुछ सैनिकों को साथ लेकर···।

अलका :

नहीं। उन्हें अभी बताना ठीक नहीं। उन्हें यह सब पता चलेगा, तो वे···।

श्वेतांग :

परंतु न बताना भी तो अहितकर हो सकता है। तुम सोचो यदि सचमुच कुमार किसी संकट में हों, और हम लोग इस समय कुछ न कर पाएँ···।

अलका :

ठहरो, सोचने दो। ···लगता है तुम्हारा कहना ही ठीक है। मन विश्वास नहीं करना चाहता कि कुमार का कुछ

अनिष्ट हो सकता है, परंतु···घने जंगल में···रात के समय···कुछ भी तो असंभव नहीं है। अच्छा···तुम बाहर ठहरो···मैं अभी उन्हें जगा देती हूँ।

श्वेतांग एक उदास नजर कक्ष पर डालकर दाईं ओर के द्वार से बाहर चला जाता है। अलका झूले के पास जाकर पल-भर सुंदरी को देखती खड़ी रहती है।

(धीरे से) देवि! *(थोड़ा झुककर)* देवि!

सामने का एक किवाड़ खुलने लगता है और नंद के शब्द सुनाई देते हैं:

नंद :

उसे जगाओ नहीं, सोई रहने दो।

अलका चौंककर पीछे देखती है। नंद किवाड़ खोलकर अंदर आता है। अलका सहसा उत्साहित हो उठती है।

अलका :

कुमार!

परंतु अगले ही क्षण उत्साह की रेखाएँ उसके चेहरे से मिट जाती हैं। नंद का वेश वही है जो जाने से पहले था, परंतु सिर मुँडा हुआ है और शरीर क्षत-विक्षत।

आप···आ···आप···!

नंद :

तुम जाओ; उसे सोई रहने दो।

अलका :

पर···पर···परंतु···मैंने उनसे कहा था कि··· आपके लौटकर आते ही··· आते ही··· मैं उन्हें जगा दूँगी।

नंद :

पर मैंने कहा है कि उसे जगाना नहीं है। तुम जाओ, एक अभ्यागत मेरे साथ हैं।

अलका आदेश-पालन के रूप में सिर झुकाती है और दाईं ओर के द्वार की ओर चल देती है।

(पीछे के बंद किवाड़ की ओर देखकर)

आ जाओ भिक्षु !

अलका जाते-जाते एक बार उस ओर देख लेती है। सामने का दूसरा किवाड़ खोलकर भिक्षु आनंद अंदर आता है। अलका द्वार के पास रुककर फिर एक बार जैसे विश्वास करने के लिए देख लेती है और बाहर चली जाती है।

कुशासन मँगवा दूँ ?

भिक्षु आनंद :

नहीं, उसकी आवश्यकता नहीं।

नंद : *(दिखाता हुआ)*

यह है मेरा घर, मेरी पत्नी का कक्ष; और यह है मेरी पत्नी।

भिक्षु आनंद :

देख रहा हूँ। घर सुंदर है, कक्ष बहुत ही सुंदर है।

नंद :

हाँ, सुंदरी को तो तुमने देखा नहीं। भिक्षु हो इसलिए देखोगे भी नहीं। संभवतः तुम्हारी दृष्टि में उसका यहाँ होना यथार्थ नहीं, केवल एक भ्रांति है।

दोनों बात करते हुए कुछ आगे आ जाते हैं।

परंतु उस तरह मैं एक भ्रांति नहीं हूँ ? तुम एक भ्रांति नहीं हो ? तुम्हारा कहा हुआ हर वाक्य एक भ्रांति नहीं है ?

भिक्षु आनंद :

दूसरों को इस सत्य तक पहुँचने में बहुत समय लगता है। मुझे प्रसन्नता है तुमने शीघ्र इसे ग्रहण कर लिया है।

नंद : *(आवेगपूर्वक)*

ग्रहण कर लिया है ?···यह कहकर तुम्हारे मन को संतोष मिलता हो, तो मैं तुम्हें उससे वंचित करना नहीं चाहूँगा।

भिक्षु आनंद :

तुम इस समय बहुत उद्विग्न हो। वन में व्याघ्र के साथ हुए द्वंद्व में···।

नंद :

जानता हूँ तुम सारा समय छाया की तरह मेरे साथ रहे हो।···व्याघ्र के साथ हुए द्वंद्व में मैं विक्षत हुआ···

भिक्षु आनंद :

अपने मन के संतोष के लिए ही न ? जो कि तुम समझते हो झूठा संतोष नहीं!···मैं छाया की तरह तुम्हारे साथ-साथ रहा हूँ क्योंकि तथागत का यह आदेश था कि···।

नंद :

तथागत के आदेश के विषय में अब और नहीं सुनना चाहता। तथागत के आदेश से तुमने मेरे केश काट दिए। बड़े भाई के सम्मान के कारण मैं उन क्षणों के लिए विमूढ़-सा हो रहा, बलपूर्वक विरोध नहीं कर सका। परंतु उसके बाद मैं अपना उत्तर उन्हें दे आया था।

भिक्षु आनंद : ***(आगे के दीपाधार के पास जाकर)***

उत्तर दे नहीं आए थे, अब तक दे रहे हो।···जोकुछ तुमने उनसे कहा, वह तुम्हारे उत्तर का एक अंश था। दूसरा अंश था तुम्हारा यहाँ न आकर जंगल में चले जाना और व्याघ्र से युद्ध करना। तीसरा अंश है···।

नंद :

इस तरह तो यह उत्तर तब तक पूरा नहीं होगा···

भिक्षु आनंद :

जब तक कि अंतर की व्याकुलता शांत नहीं हो जाती।

नंद : *(व्यंग्यपूर्वक हँसकर)*

और वह शांत होगी, तुमसे दीक्षा लेने से !

भिक्षु आनंद :

नहीं, दीक्षा लेने से वह शांत न होगी।

नंद टहलता हुआ शृंगारकोष्ठ के पास चला जाता है। वहाँ की व्यवस्था को देखकर थोड़ा चौंकता है, फिर भिक्षु आनंद की ओर लौट आता है।

नंद :

तो ?···तो कैसे शांत होगी वह ?

भिक्षु आनंद :

यह प्रश्न तुम मुझसे नहीं, अपने से पूछ रहे हो।

नंद : *(सहसा रुककर)*

और नहीं भिक्षु !···यह बातों का खेल हमारे बीच और नहीं खेला जाएगा। स्वर्ग और नरक, वैराग्य और विवेक, शील और संयम, आर्यसत्य और अमृत—मैं जानता हूँ वाणी के छल से तुम मुझे किस ओर ले जाना चाहते हो। मैं तथागत के सामने कह चुका हूँ और अब फिर से कहे देता हूँ कि वह दिशा मेरी नहीं है, कदापि नहीं है।

भिक्षु आनंद :

निःसंदेह नहीं है। तुम अपने लिए अपनी दिशा खोज रहे हो, यह व्याकुलता ही वास्तविक आरंभ है। तुम यह जानते हो, इसीलिए अपनी व्याकुलता से इतना नहीं लड़ रहे।

नंद :

बातें अब रहने दो भिक्षु ! तुम घर देखना चाहते थे, घर तुमने देख लिया है। *(दाएँ और बाएँ संकेत करके)* उधर मेरा कक्ष है, इधर उद्यान है···।

भिक्षु आनंद :

मैं घर देखने आया था···घर···कक्ष और उद्यान नहीं।··· अब मुझे चलना चाहिए।

पल-भर स्थिर दृष्टि से नंद को देखता रहता है, फिर सामने के द्वार की ओर चल देता है।

अच्छा···।

नंद पल-भर अपने स्थान पर रुका रहता है, फिर उस द्वार की ओर बढ़ता है।

नंद :

ठहरो, भिक्षु!

भिक्षु आनंद रुककर प्रश्नदृष्टि से उसकी ओर देखता है।

जाने से पहले तुमसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ।

भिक्षु आनंद :

मुझसे? परंतु जो व्यक्ति तुम्हारे किसी भी प्रश्न का उत्तर दे सकता है, वह मैं नहीं हूँ। उत्तर किसी भी प्रश्न का तुम्हें केवल एक ही व्यक्ति से मिल सकता है और उस व्यक्ति का नाम है···नंद।

नंद :

तो जाओ, भिक्षु!···मैं फिर से वही खेल खेलने के लिए तुम्हें नहीं रोकना चाहूँगा।

उसकी ओर से मुँह फेरकर आगे के दीपाधार के पास आ जाता है। भिक्षु आनंद बाहर से मुड़कर एक बार उसकी ओर देख लेता है।

भिक्षु आनंद :

मुझे रोकने का तो प्रश्न ही नहीं है, नंद!···जिसे तुमने रोक रखा है, वह व्यक्ति कोई दूसरा ही है।

बाहर चला जाता है। नंद जब तक मुड़कर उस ओर

देखता है, तब तक वह जा चुका है। नंद जैसे उसे सुनाने के लिए कुछ कदम द्वार की ओर जाता है।

नंद :

बातों को उलझाते क्यों हो, भिक्षु ? कौन है वह दूसरा व्यक्ति ? कौन है वह जिसे मैंने रोक रखा है ?

भिक्षु तब तक जा चुका है। नंद गवाक्ष तक जाकर लौट आता है।

जानता हूँ तुम्हारा क्या उत्तर होता। रुकते, तो तुम इतना ही कहते, "तुम उस व्यक्ति को नहीं जानते नंद ? मुझे आश्चर्य है! परंतु तुम्हारी मुस्कराती हुई भौंहें कहतीं कि तुम्हें आश्चर्य नहीं है; आश्चर्य की बात केवल व्यंग्य है, उपहास है।

बढ़कर मदिराकोष्ठ के पास आता है, मदिरापात्र को उठाकर देखता है और रख देता है।

(पीछे द्वार की ओर देखकर) नहीं, आज मदिरा नहीं लूँगा; भिक्षु ! तुम्हारी मुस्कराती हुई आँखें जिससे यह न कह सकें, "स्मृति से इतना डर क्यों लगता है, नंद ? अपनी स्मृति को मदिरा की विस्मृति में डुबो देना क्यों चाहते हो ?" *(मदिराकोष्ठ से आगे आता हुआ)* यद्यपि इसका उत्तर मैं तुम्हें दे सकता था। कह सकता था कि स्मृति से बचने के लिए तुमने जो स्वाँग रचा है, वह स्वाँग मैंने नहीं रचा, इसलिए।

लौटकर झूले के पास चला जाता है और पल-भर स्निग्ध दृष्टि से देखता रहता है।

अच्छा है तुम सो रही हो। जाग रही होतीं, तो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर शायद मैं न दे पाता।

उसके पास से हटकर टहलता हुआ पीछे दीपाधार की ओर जाता है।

मैंने कहा था तुम्हारा विशोषक सूखने से पहले ही मैं लौट आऊँगा, परंतु नहीं आ सका। तुम पूछतीं, क्यों, तो मैं क्या उत्तर देता ? क्या कहता कि तथागत के पास से उठ आने के बाद क्यों मन में कल के मरे हुए मृग को देखने की कामना इतनी प्रबल हो आई थी कि किसी भी तरह अपने को वहाँ जाने से रोक नहीं सका ? कैसे बताता कि मृग के स्थान पर एक नोच खाई ठठरी को देखकर मुझे कैसा लगा ? और कि फिर क्यों मैं अचानक उस गुरगुराकर सामने से आते व्याघ्र से उलझ पड़ा ? जानता था कि यह प्रवृत्ति आत्म-विनाश की है, परंतु उस प्रवृत्ति को मैं रोक क्यों नहीं सका ? क्यों मैंने जान-बूझकर आत्म-विनाश को निमंत्रित किया, और फिर स्वयं ही आत्म-रक्षा के लिए उस तरह लड़ गया ? क्षत-विक्षत हम दोनों हुए···पलायन भी एक तरह से दोनों ने ही किया···। क्यों ? आत्म-विनाश और आत्म-रक्षा, दोनों प्रवृत्तियों के बीच एक साथ मैं कैसे जिया और क्यों ? और उस तरह जीकर क्या सुख मिला ? और क्या यह सुख की ही खोज थी जिसने उस तरह जीने के लिए विवश किया ?

उस दीपाधार के पास से हटकर आगे के दीपाधार की ओर आता है।

या यह केवल मन का विद्रोह था···बिना विश्वास एक विश्वास के अपने ऊपर लादे जाने के लिए ? या कि इसलिए कि उस समय मैं इतना सत्त्वहीन क्यों हो गया कि भिक्षु आनंद के कर्त्तनी उठाने पर चिल्ला नहीं सका कि 'यह विश्वास मेरा नहीं है। मैं तुम्हारा या किसी और का विश्वास ओढ़कर नहीं जी सकता, नहीं जीना चाहता।'

दीपाधार के पास से टहलता हुआ शृंगारकोष्ठ की ओर जाता है।

इतना समझ में आता है कि जिये जाने से जीवन धीरे-धीरे चुक जाता है। कि हर उन्मेष का परिणाम एक निमेष है और काल के विस्तार में निमेष और उन्मेष दोनों अस्थाई हैं। सुख सुख नहीं है, काई पर फिसलते हुए पाँव का एक स्पदन-मात्र है, मात्र रेत में डूबती हुई बूँद की एक अकुलाहट···परंतु वह स्पन्दन, वह अकुलाहट ही क्या जीवन का पूरा अर्थ, जी लेने का कुल पुरस्कार नहीं है?···आकाश में कहीं लटकते हुए नीले काले बिंदु—कोरे सिद्धांतों के—वे अधिक स्थाई, अधिक सत्य कैसे हैं?

टूटे हुए दर्पण के सामने रुककर कुछ क्षण अपना प्रतिबिंब उसमें देखता रहता है।

उन्होंने केश कटवा दिए, तो क्या व्यक्ति रूप में मैं अधिक सत्य हो गया? जिह्वा कटवा देते, हाथ-पैर कटवा देते, तो और अधिक सत्य हो आता? कौन कह सकता है कि भ्रांति वस्तुतः किसे है; उन्हें या मुझे? *(दर्पण के पास से हटकर)* उन्होंने कहा, 'मैं मैं नहीं हूँ, तुम तुम नहीं हो, वह वह नहीं है···सब किसी उँगली से आकाश में बनाए गए चित्र हैं जो बनते-बनते साथ ही मिटते जाते हैं, जिनका होना न होने से भिन्न नहीं है।'··· पर मैं पूछता हूँ कि जब होने-न-होने में कोई अंतर नहीं है, तो मेरे केश क्यों कटवा दिए? *(टहलकर फिर से झूले और पीछे के दीपाधार की ओर जाता हुआ)* कटवा ही दिए, तो उससे अंतर क्या पड़ता है! कुछ ही दिनों में फिर नहीं उग आएँगे? *(झूले के पास रुककर)* अंतर पड़ता यदि मेरा हृदय बदल जाता, आँखें बदल जातीं। मेरे

हृदय में तुम्हारे लिए अब भी वही अनुराग है, आँखों में तुम्हारे रूप की अब भी वही छाया है।

इस बीच कई-एक दीपक बुझ चुके हैं और कक्ष का प्रकाश पहले से मंद पड़ गया है।

तुम्हारा विशेषक जो सूख गया, उसका मुझे खेद है। उसे मैं अभी गीला कर देता हूँ।

शृंगारकोष्ठ के पास जाकर वहाँ से चंदन-लेप की कटोरी उठा लाता है। उँगली पर थोड़ा-सा लेप लेकर उससे सुंदरी के माथे पर हल्का-सा बिंदु बनाने लगता है। सुंदरी हड़बड़ाकर जाग जाती है। अपने पर झुकी हुई मुंडित आकृति को देखकर उसके मुँह से चीख निकल जाती है और वह आँखों पर हाथ रख लेती है। दाईं ओर से अलका, नीहारिका और श्वेतांग घबराए हुए आते हैं। नंद अव्यवस्थित होकर सहसा पीछे के दीपाधार की ओर हट जाता है।

अलका : क्या बात है, देवि ? क्या हुआ है ?···कोई भयानक सपना देखा है ?

सुंदरी : ***(आँखों पर हाथ रखे हुए अलका के शरीर को छूकर)*** यह तू···तू है अलका ?

आँखों पर हाथ रखे रहती है और जैसे विश्वास कर लेना चाहती है कि पास खड़े सब लोग उसके परिजन ही हैं। नंद कुछ सोचता-सा शृंगारकोष्ठ की ओर जाता है और चंदन-लेप की कटोरी वहाँ रखकर और एक नजर सुंदरी पर डालकर दाईं ओर के द्वार से चला जाता है।

और कौन-कौन लोग हैं ?

अलका : नीहारिका है और श्वेतांग है। ठहरिए, मैं आपके लिए

पानी ले आऊँ।

मैं लेकर आती हूँ।

नीहारिका :

दाईं ओर के द्वार से चली जाती है।

अलका :

तुम श्वेतांग, कुमार के कक्ष में जाकर स्नान के लिए पानी और बदलने के लिए दूसरे वस्त्र निकालकर उन्हें दो।

सुंदरी धीरे-धीरे आँखों से हाथ हटाती है। श्वेतांग दाईं ओर के द्वार से चला जाता है।

सुंदरी :

तू क्या कह रही थी अलका···कुमार के कक्ष में स्नान के लिए पानी···और बदलने के लिए वस्त्र··· *(झूले से उठती हुई)* वे लौट आए हैं?

अलका : ***(पल-भर के असमंजस के बाद)***

हाँ, देवि!···कुछ देर पहले लौट आए हैं।

सुंदरी :

और तूने मुझे जगाया नहीं?···तूने कहा था कि उनके आते ही···।

अलका : कुमार ने आपको सोए हुए देखा, तो···तो जगाने से मना कर दिया। मैंने सोचा कि वे···वे आदेश दे रहे हैं, इसलिए···।

सुंदरी :

कहाँ हैं वे? अपने कक्ष में?

अलका :

हाँ··· अपने कक्ष में ही हैं।··· थके हुए थे, इसलिए श्वेतांग से कहा है, उनके स्नान इत्यादि की व्यवस्था करे।

सुंदरी बढ़कर चबूतरे के पास आ जाती है।

सुंदरी :

वे लौट आए हैं !···फिर ऐसा···ऐसा भयानक सपना मैंने क्यों देखा ?

अलका :

सोते समय आपका मन स्वस्थ नहीं था···और फिर आप तो सपनों में विश्वास नहीं करतीं···।

सुंदरी : *(अपने को सहेजने का प्रयत्न करती हुई)*

विश्वास मैं नहीं करती···फिर भी सोचती हूँ कैसा सपना था वह।

नीहारिका जलपात्र में पानी लिए हुए आती है।

नीहारिका :

पानी ले लीजिए, देवि !

सुंदरी :

नहीं, मुझे पानी की आवश्यकता नहीं।

नीहारिका अलका की ओर देखती है और जलपात्र लिए हुए लौट जाती है।

अलका :

आप सपने की बात कह रही थीं।

सुंदरी :

मैंने देखा कि···परंतु अलका, लगता है जैसे वह सपना न हो, जो कुछ मैंने देखा है, खुली आँखों से ही देखा हो।

अलका :

क्या देखा आपने ?

सुंदरी : *(चबूतरे से शृंगारकोष्ठ की ओर बढ़ती हुई)*

देखा कि मैं झूले में पड़ी हूँ···सहसा एक ठंडे स्पर्श से आँख खुल जाती है। आँख खुलते ही *(सिहरकर)*···देखती हूँ कि एक रुंड-मुंड आकृति मेरे ऊपर झुकी हुई है; उसका हाथ मेरे माथे पर है···तभी मेरे मुँह से चीख निकल जाती

है और मैं···मैं सचमुच जाग जाती हूँ।

शृंगारकोष्ठ के पास जाकर पल-भर दर्पण के सामने रुकी रहती है।

किसी ने यहाँ नया दर्पण लाकर नहीं रखा ?

अलका :

यह दर्पण यहाँ अच्छा नहीं लग रहा था, पर मैंने सोचा कि बिना आदेश पाए···।

सुंदरी :

पर यह सबकुछ···।

चंदन-लेप की कटोरी उठाकर देखती है।

यह कटोरी तूने भर दी थी ?···इसमें यह···यह निशान किसकी उँगली का है ?

अलका :

निशान ?

पास जाकर कटोरी लेकर देखती है।

संभव है···भरकर लाते हुए···मेरी ही उँगली से यह निशान बन गया हो। अब बैठिए, मैं आपके शरीर का कुछ प्रसाधन कर दूँ।···कुमार जब तक नहाएँ, तब तक आप···।

सुंदरी :

नहीं, अलका! मैंने तब तुझे बताया नहीं था। मैंने दिन-भर शरीर का प्रसाधन नहीं किया क्योंकि···

द्वार की ओर बढ़ती है।

ठहर, मैं अभी उनके कक्ष में होकर आती हूँ।

अलका :

(एकाएक आगे आकर)

देवि !

सुंदरी : *(रुककर)*

क्यों ?···कह न, क्या कहना चाहती है ?

अलका :

मैं सोचती थी कि यदि···।

सुंदरी :

कह न, क्या सोचती थी ?

अलका :

सोचती थी कि यदि···यदि कुमार के सामने जाने से पहले आप···।

सुंदरी :

फिर वही बात ? मैं तुझे बता चुकी हूँ कि मैं अभी प्रसाधन नहीं करूँगी।

अलका :

तो भी यदि कुछ देर···मेरा मतलब है कुमार के स्नान करने तक यदि···।

सुंदरी :

नहीं, मैं और प्रतीक्षा नहीं करूँगी। पाँच पहर से मैंने उन्हें देखा नहीं है।

दाईं ओर के द्वार से चली जाती है। अलका द्वार तक जाती है और लौट आती है। उद्विग्न भाव से शृंगारकोष्ठ के पास जाकर चंदन-लेप की कटोरी को उठाती और रख देती है। साथ ही आशंकित भाव से द्वार की ओर देखती हुई उधर की प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा करती है। कुछ अंतराल के बाद सहसा उधर से सुंदरी के शब्द सुनाई देते हैं:

नेपथ्य :

नहीं-नहीं···यह संभव नहीं···।

अलका बढ़कर द्वार की ओर जाने लगती है कि सहसा

सुंदरी उधर से आ जाती है। भाव ऐसा है जैसे सहसा कहीं से चोट खा आई हो।

अलका : ***(पास जाकर उसे सँभालने के प्रयत्न में)***
ऐसे क्यों हो रही हैं, देवि ?

सुंदरी : ***(सहसा आवेश में)***
तू···तूने बताया क्यों नहीं मुझे ? क्यों नहीं बताया कि जो मैंने देखा था, वह सपना नहीं था ?

अलका सहारे से उसे चबूतरे पर बिठाने का प्रयत्न करती है।

क्या अब तू मुझे यह विश्वास दिलाना चाहेगी कि मैं जागती आँखों से भी सपना ही देखकर आई हूँ ?

अलका :
मैंने इसीलिए नहीं बताया कि आप जान लेंगी, तो बहुत अस्थिर हो उठेंगी···।

सुंदरी उसके हाथ हटा देती है।

सुंदरी :
जान लेती, तो कम-से-कम दूसरी बार के आघात से तो बच जाती। वह आकृति एक दुःस्वप्न नहीं···यथार्थ है···मेरा अपना यथार्थ···क्या मैं उसका सामना कर सकती हूँ ?···क्या एक बार इतना भी कह सकती हूँ···कि आपने···आपने मेरे पास से जाकर···यह सब कैसे हो जाने दिया···क्यों हो जाने दिया ?

अलका :
जानती हूँ, आपको मन में कैसा लग रहा है। परंतु आप मन को सँभालेंगी नहीं, तो सोचिए कुमार को कैसा लगेगा ? अब जबकि वे लौट आए हैं···

सुंदरी :
वे नहीं आए, अलका ! जो लौटकर आया है, वह व्यक्ति

कोई दूसरा ही है···।

अपने उद्वेग को रोक पाने में असमर्थ सहसा बाईं ओर के द्वार से उद्यान की ओर निकल जाती है।

(जाते-जाते) ··कोई दूसरा ही···!

उसी समय दाईं ओर के द्वार से नंद अंदर आता है। आँखों से खोया-खोया और चेहरे से गंभीर।

नंद : ***(अलका को देखे बिना पीछे के दीपाधार की ओर जाता हुआ)***

कोई दूसरा ही!···तो क्या सचमुच मैं कोई दूसरा ही हूँ? भिक्षु ने यही कहा था···तुम भी अब यही कह रही हो।···परंतु मैं जानना चाहता हूँ कि मैं कोई दूसरा कैसे हूँ? मात्र इसलिए कि किसी ने हठ से मेरे केश काट दिए हैं?

दीपाधार के पास रुकता है, तो सहसा दृष्टि अलका पर पड़ती है। अलका जैसे अप्रसन्न होकर शृंगारकोष्ठ के पास झुकी हुई है।

तुम यहीं खड़ी हो, अलका? जाओ, तुम्हारी स्वामिनी को तुम्हारी आवश्यकता होगी।

अलका आँखें उठाकर उसकी ओर देखती है, फिर आँखें झुका लेती है।

अलका :

मैं जा रही हूँ···।

दाईं ओर के द्वार से चली जाती है।

नंद होंठ काटता हुआ अंतर्मुख भाव से दीपाधार के पास से मत्स्याकार आसन की ओर आता है।

नंद :

तब नहीं लगा था, पर अब लगता है कि केश काटकर उन्होंने मुझे बहुत अकेला कर दिया है। घर से···और

अपने-आपसे भी अकेला ! जिस सामर्थ्य और विश्वास के बल पर जी रहा था, उसी के सामने मुझे असमर्थ और असहाय बनाकर फेंक दिया गया है।

आसन को ऐसे छूकर आगे निकल आता है जैसे उसमें भी उसे परायेपन का आभास होता हो।

चेहरे की गंभीरता के साथ एक दृढ़ता दिखाई देने लगती है।

लगता है मैं चौराहे पर खड़ा एक नंगा व्यक्ति हूँ जिसे सभी दिशाएँ लील लेना चाहती हैं और अपने को ढकने के लिए उसके पास कोई आवरण नहीं है।···परंतु मैं इस असहायता की स्थिति में नहीं रह सकता।···तब प्रश्न उन्होंने पूछे थे···अब मुझे जाकर उनसे कई-कई प्रश्न पूछने होंगे।···जीने की इच्छा को कितने-कितने प्रश्नों ने एक-साथ घेर लिया है ! व्याघ्र से लड़कर भी मन को शांति नहीं मिली···लगता है अभी और लड़ना है, बहुत लड़ना है···ऐसे किसी से जिसके पास लड़ने के लिए भुजाएँ नहीं हैं !···मन में मृत्यु का भय है···किसी भी प्रकार की मृत्यु का···परंतु उस भय में साथ एक आकर्षण भर दिया गया है। अस्तित्व और अनस्तित्व के बीच मेरी चेतना को एक प्रश्चचिह्न···केवल एक प्रश्नचिह्न बनाकर छोड़ दिया गया है। क्यों···पहले इसी प्रश्न का उत्तर मुझे उनसे जानना है···आज ही···और अभी···।

पल-भर जैसे सोचता-सा रुका रहता है।

हाँ, अभी···।

सामने के द्वार की ओर बढ़ता है। श्वेतांग दाईं ओर के द्वार से आता है।

श्वेतांग :

कुमार !

नंद रुककर उसकी ओर देखता है।

स्नान के लिए पानी रख दिया है। बदलने के लिए वस्त्र भी निकाल दिए हैं।

नंद : *(जाते-जाते)*

अभी नहीं श्वेतांग ! वस्त्र बदलने का समय अभी नहीं हुआ।

श्वेतांग :

परंतु कुमार··· !

नंद :

मेरे साथ आओ। तुम्हारे लिए इस समय दूसरा कार्य है।

बाहर चला जाता है। श्वेतांग रुककर उद्यान की ओर देखता है। फिर उसके पीछे-पीछे चला जाता है। पल-भर के व्यवधान के बा· बाईं ओर के द्वार से अलका आती है।

अलका :

कुमार !

चारों ओर नजर दौड़ाती है, पर नंद को न देखकर उसी द्वार से चली जाती है। फिर सुंदरी के साथ वापस आती है।

लगता है कुमार फिर अपने कक्ष में चले गए हैं।

सुंदरी :

वहाँ वह सूना कमलताल··· यहाँ कक्ष का यह सूनापन··· लगता है आज घर अपना घर नहीं रहा···।

धीरे-धीरे जाकर मत्स्याकार आसन पर बैठ जाती है।

अलका :

नीहारिका से कह दूँ कि कुमार स्नान कर चुकें, तो···।

सामने के द्वार से श्वेतांग गंभीर और थका-सा अंदर आता है।

श्वेतांग :

कुमार स्नान नहीं करेंगे। उन्होंने मुझसे कहा है कि···।

सुंदरी सहसा आसन से उठ खड़ी होती है।

सुंदरी :

क्या कहा है उन्होंने? और···वे···वे बाहर कब चले गए?···वे तो···।

श्वेतांग :

कुमार अभी-अभी बाहर गए हैं। जाते हुए उन्होंने मुझसे कहा है कि···।

सुंदरी : ***(पहले से और अव्यवस्थित होकर)***

वे अभी-अभी फिर बाहर चले गए हैं?···क्यों? रात के समय इस तरह जाने का कारण?

श्वेतांग :

कारण उन्होंने नहीं बताया। इतना ही कहा है कि···।

सुंदरी : ***(उतावली में)***

क्या कहा है उन्होंने? जल्दी से बताते क्यों नहीं?

श्वेतांग सिर झुका लेता है और प्रयत्न से बात कह पाता है।

श्वेतांग :

उन्होंने कहा है कि···वे अपने केशों की खोज में जा रहे हैं। जाकर तथागत से पूछना चाहते हैं कि उन्होंने उनके केशों का क्या किया? और यदि कुछ नहीं किया, तो क्या उनके केश उन्हें लौटाये जा सकते हैं? उनकी पत्नी को उन केशों की आवश्यकता है···

सुंदरी जैसे जड़-सी हो रहती है।

सुंदरी :

यह कहा है उन्होंने ?

हाथों में मुँह छिपाए हुए फिर आसन पर बैठ जाती है।

इतना ही समझ पाए हैं वे ?··· *(मुँह से हाथ हटाकर)* जाओ तुम लोग। जाओ, मुझे इस समय एकांत चाहिए।

श्वेतांग अलका की ओर देखता है और सिर झुकाए धीरे-धीरे चला जाता है। अलका सुंदरी को सहेजने के प्रयत्न में उसके पास बैठने लगती है।

जा, तू भी जा अलका ! मैंने कहा है, मुझे एकांत चाहिए, बिल्कुल एकांत !

अलका अनमने भाव से उसके पास से हटकर उसी द्वार से चली जाती है।

(रुँधे हुए गले से) इतना ही तो समझ पाते हैं ये लोग !···बस इतना ही तो इनकी समझ में आ पाता है !

फिर से मुँह हाथों में छिपा लेती है। प्रकाश धीमा होने लगता है और उसके साथ-साथ नेपथ्य से श्यामांग के शब्द सुनाई देते हैं।

नेपथ्य :

नहीं···किसी की समझ में नहीं आता···पत्थर···पानी में पत्थर मैंने नहीं फेंके···जिसने पत्थर फेंके···वह भी··· वह भी वही छाया थी···यह अँधेरा···यह अँधेरा मुझसे नहीं ओढ़ा जाता···मुझे एक किरण ला दो···एक किरण···।

इस बीच सुंदरी की छायाकृति चेहरे से हाथ हटाती है।

सुंदरी :

इससे अधिक कभी समझ भी नहीं पाएँगे ये···कभी नहीं समझ पाएँगे !

नेपथ्य : *(विलीन होता हुआ स्वर)*

बस एक किरण···केवल एक किरण···!

नेपथ्य का स्वर और मंच की आकृति दोनों साथ-साथ विलीन हो जाते हैं।

• • •

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना